# ककसाड़

वर्ष 10 अंक 95 • फरवरी, 2024
मूल्य : 25/- रुपए
ककसाड़
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका
ISSN 2456-2211

दिल्ली से प्रकाशित

# ककसाड़ निम्नानुसार सदस्यता राशि

| | | | |
|---|---|---|---|
| व्यक्तिगत वार्षिक | ₹ 350/- | आजीवन व्यक्तिगत | ₹ 3000/- |
| संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक | ₹ 500/- | संस्था | ₹ 5000/- |

## सदस्यता राशि प्रेषित करने के लिए ककसाड़ बैंक खाता विवरण

• खातेदार का नाम- **ककसाड़** • बैंक- **सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, खान मार्केट, दिल्ली**
• खाता संख्या- **3483675563** • आई.एफ.एस.सी. कोड- **CBIN0280310**
• एम.आई.सी.आर. कोड-**110016018**

### विज्ञापन हेतु दरें

| रंगीन | | श्वेत/श्याम |
|---|---|---|
| फुल पेज (इनर) | ₹ 15,000 | ₹ 10,000 |
| बैक पेज कवर | ₹ 25,000 | — |
| बैक इनसाइड कवर | ₹ 10,000 | — |
| फ्रन्ट इनसाइड कवर | ₹ 20,000 | — |
| डबल स्प्रीड (इनर) | ₹ 30,000 | ₹ 20,000 |

सहयोग राशि प्रेषित करने के बाद निम्नलिखित नंबर पर एस.एम.एस./फोन अथवा ई-मेल द्वारा तत्काल भेजें- 09968288050/09425258105/011-22728461, kaksaadeditor@gmail.com

कार्यालय—सी-54 रिट्रीट अर्पाटमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

## ककसाड़ पत्रिका और लिटिल बर्ड प्रकाशन
### की पुस्तके यहाँ भी उपलब्ध है:

1. **मौर्या बुक स्टाल**
बी.एच.यू गेट लंका, वाराणसी-221005 उ.प्र.

2. **राजू मैगजीन सेन्टर**
दुकान न.1, ओम साई गेस्ट हाउस (SBI ATM के पास) लंका, वाराणसी -221005 उ.प्र.

3. **दीवान न्यूज एजेंसी**
सदर बाजार, झाँसी-284001 उ.प्र.

4. **पंजाब बुक सेंटर**
एस.सी.ओ. 1126-27, सेक्टर-22 बी, चंडीगढ़-160022 हरियाणा

5. **लालमुनि बुक स्टाल**
आर.एम.शाह चौक, पूर्णिया-854301 (बिहार)

6. **सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी**
110, ई- बंगला साहिब रोड, गोल मार्केट, नई दिल्ली-110001

7. **स्टूडेंड कॉर्नर**
गोलघर सिनेमा रोड, गोरखपुर-273003 उ.प्र.

8. **यूनिवर्सल बुक हाउस**
शॉप न.17, विक्रम बिल्डिंग, लंका, वाराणसी-221005 उ.प्र

9. **गीता पुस्तकालय**
दुकान न.17, श्री विश्वनाथ मंदिर, बी.एच.यू, वाराणसी-221005 उ.प्र.

10. **सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी**
डिपार्टमेंट एल.सी, 4-ई/15, अशोक सेंटर झंडेवालान एक्स, नई दिल्ली-110055

11. **इंडियन बुक डिपो**
आदित्य भवन, प्रथम तल, बी.एन.वर्मा रोड अमीनाबाद पो.ऑ. के सामने, लखनऊ-226018 उ.प्र.

# ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

फरवरी 2024 वर्ष-10 • अंक-95

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

•

ग्राफिक डिजाईन
रोहित आनंद (लिटिल वर्ड)

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •
सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन,
पटपड़गंज, दिल्ली-110092
फोनः 9968288050, 011-22728461

•

• संपादकीय कार्यालय •
151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226
फोनः 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com
वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : रु. 25 (एक प्रति), वार्षिक : रु. 350/- संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : रु. 500/- वार्षिक (विदेश) : $110 यू.एस. आजीवन व्यक्तिगत : रु. 3000/- संस्था : रु. 5000/-

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक
दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।
• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • कुसुमलता सिंह स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

## अनुक्रम

दिल्ली साहित्य कला परिषद (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

4. संपादकीय

साक्षात्कार

6. समाज सदैव समय के सापेक्ष गतिमान होता है (डॉ. अमिता दुबे से कुसुमलता सिंह की बातचीत)

लेख

15. असम की कार्बी जनजाति : वीरेन्द्र परमार
17. आदिवासी मिथकीय लोक और जीवन-यथार्थ का जीवंत चित्र : पुनीता जैन
21. जौनसारी जनजाति : कुसुमलता सिंह
22. उत्तर आधुनिक विमर्शः हिंदी कविता में स्त्री लेखन की अन्तर्दृष्टियाँ : प्रियंका भारद्वाज
25. सावर जनजाति : सी. लाल सोता एवं प्रकाश चन्द्र उरांव
27. झापांग : परंपरा के बहाने वस्तुगत सत्य की खोज : डॉ. सुजाता कुमारी
31. बाजार संस्कृति में लोक साहित्य : भालचन्द्र जोशी

कहानी

09. ब्लैंक कॉल : डॉ. अमिता दुबे
37. भाग्य : दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'
41. अबाबील : ख़्वाजा अहमद अ'ब्बास

कविता

42. जितेंद्र जलज 42. डॉ. नवीन दवे मनावत 43. बन्धु पुष्कर 43. ज्ञानप्रकाश विवेक 44. माधुरी राऊलकर 45. अंजू अना

यात्रा वृतांत

12. अजंता की गुफाएँ : अविश्वसनीय आश्चर्य : अखिलेश निगम 'अखिल'

लघुकथा

8. तलवार सोने की बन गयी
36. यार्दे

पुस्तक समीक्षा/पुस्तक चर्चा

46. काल के कपाल पर हस्ताक्षर : डॉ. बहादुर सिंह परमार
48. यह देवताओं के सोने का समय है : कुसुमलता सिंह
14. क्या है ककसाड़?
49. सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समाचार

आवरण कलाकृति - मिथिलेश श्याम (गोंड कलाकार)
इनकी कला की विशेषता मछली के छिलके और रस्सियों की ऐंठन की आकृति को चित्रों में लाना।
भोपाल (म.प्र.)
मो. 74892-12375

लीजिए गुनगुनी धूप के साथ फरवरी का नया अंक अपनी नयी सज-धज के साथ आपके हाथों में है। यह महीना जनजातीय वनांचलों का सबसे खुशनुमा महीना होता है। धान,कोदो कुटकी आदि पहाड़ी क्षेत्रों में उपजने वाले अन्य मोटे अनाज की फसल अब तक खलिहानों में सिद्ध होकर, कुछ मात्रा तो साल भर अपने खाने के लिए और अगले साल खेतों में फिर से बोने के लिए परंपरागत तरीके से संरक्षित कर ली जाती है और बाकी की फसल बाजार पहुँच चुकी होती है। जिसका जितना दामन था, उसको उतनी सौगात मिली के तर्ज पर किसानों के हाथों मे कुछ पैसे भी इस महीने आ जाते हैं। इसके साथ ही शुरू होता है हरेक गांव के देवी देवताओं को मनाने, आशीर्वाद लेने हेतु अनिवार्य वार्षिक पूजा, जात्रा, उत्सव का दौरय मेला मंडई का दौर। सारी सारी रात चलने वाले ककसाड़, करसाड़,कड़साड़ का दौर।

पतझड़ी जंगलों में वनोपज संग्रह का भी यही सही मौसम होता है। जो कि वनवासियों के जीवन यापन हेतु अतिरिक्त आय का एकमात्र साधन होता है। इन दिनों मौसम साल के वन एक साथ फूल उठते हैं। महुआ के पेड़ रसभरे फूलों से लद जाते हैं।आम भी वउरा उठते हैं। जंगल के फल,मेवा,जामुन,चार चारोली, करमत्ता, कुलीकाटा, कुड़ी पाक, कुरलू, सीताफल आदि का यही मौसम है।

बस्तर में तो इन दिनों जब महुआ की मादक मीठी भीनी भीनी सी सुगंध पूरे अंचल में छा जाती है तो मनुष्य की बात छोड़िए जानवर भी मद मत्त होकर डोलते नजर आते हैं। पेड़ों के नीचे गिरे महुए को खाकर गाय बैल झूमते नजर आते हैं और घर की चौखट भूल जाते हैं। महुए के पेड़ के नीचे तड़के सुबह प्रायः रसीले महुए के रसिक भालू महराज से भेंट हो जाती है। हाथी भी झुंड के साथ महुआ की दावत उड़ाने निकल पड़ते हैं।

उत्सव, त्यौहार व खुशियाँ मनाने के मामले में हमारे तथाकथित विकसित समाज और जनजातीय समाज में एक बड़ा बुनियादी फर्क है। मनुष्य ने जब से मुद्रा का आविष्कार किया र कालांतर में अपने ही बनाई गई मुद्रा का गुलाम बन कर रह गया। जब से मुद्रा चलन में आई तबसे विकसित समाज में खुश होने, खुश रहने उत्सव मनाने के लिए सबसे पहले जरूरत होती है मुद्रा। बिना पैसे के हम कोई भी त्यौहार,उत्सव मनाने अथवा मेला जाकर खुशियां मनाने की कल्पना भी नहीं कर सकते। जबकि उत्सवधर्मी जनजातीय समाज हर सप्ताह, हर दिन कोई न कोई त्यौहार और उत्सव मनाते रहता है। और आप मानें या ना मानें उन्हें आए दिन मनाए जाने वाले इन त्योहारों, उत्सवों, इन खुशियों को मनाने के लिए अलग से किसी मुद्रा या पैसा नामक वस्तु की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती। 150-200 साल पहले पैसा नामक असाध्य बीमारी से इनका परिचय करवाने के गुनाहगार हम ही हैं। आज भी बस्तर के अंदरूनी क्षेत्रों के जनजातीय गांव में का आदिवासी बिना 1 के भी अपने उत्सव त्यौहार बड़े मजे से मना लेता है।

दरअसल त्योहार या उत्सव के लिए सबसे जरूरी तत्व है समुदायिकता, जो कि जनजातीय समाज की मूल प्रवृत्ति में समाहित है। महानगरों की गगनचुंबी इमारतों में मधुमक्खी के छत्ते के की तरह अलग-अलग खांचों में हजारों हजार लोग एक दूसरे से सट कर रहने के बावजूद एक दूसरे से लगभग अपरिचित यांत्रिक जीवन जी रहा हमारा सभ्य कहलाने वाला यह समाज इसे नहीं समझ सकता।

उत्सव मनाने के लिए मनोदशा के अलावा अन्य बाहरी साधनों के अगर बात करें तो प्रकृति-पुत्र जनजातीय समुदाय के पास खुश रहने तथा खुशियाँ मनाने के सभी अनमोल साधन बिना मोल उपलब्ध हैं। जंगल से लगी उबड़ खाबड़ जंगली-पहाड़ी जमीनों पर उगाये जाने वाले रागी ज्वार बाजरा मक्का कोदो कुटकी मूंग कुल्थी आदि मोटे अनाज जो आज श्रीअन्न के नाम से अभिजात वर्ग के महंगे सुपर-फूड बन गए हैं वह तो सदियों से इनका रोजमर्रा का भोजन है। जंगलों से बिनकर लाकर साल भर के लिए सुखाकर रखे महुआ से घरों में तैयार की गई शुद्ध जैविक शराब जिसे आम तौर

पर 'दारु' कहा जाता है वह हमेशा इनकी पहुँच में होती है। लेकिन इसका सेवन 'दवा' की भांति बहुत ही थोड़ी थोड़ी मात्रा में और बड़े ही संतुलित तरीके से किया जाता है। शायद 'दवा-दारू' शब्द यहीं से निकला है। यहाँ यह बताना भी लाजिमी है कि यही शुद्ध जैविक महुए की शराब इन दोनों फ्रांस में धूम मचा रही है और स्काच से भी महंगे दाम पर विक रही है। जिस 'बॉन फायर' उत्सव को साल में काम से कम से कम एक बार मनाने लिए लोग तरसते हैं वो यहाँ हर गाँव में हर उत्सव में सहज उपलब्ध है। जिस इको फ्रेंडली मड-काटेज में रहने के लिए 10 से 20 हजार का रोजाना किराया देकर भी बुकिंग के लिए लोग तरसते हैं वह इनका परंपरागत निवास है। हम अपने ही बनाई कंक्रीट के जंगलों में खतरनाक प्रदूषण से गिरे हुए एक भरपूर साँस के लिए तरसते हैं वहीं प्रकृति के सहचर के वनवासियों के चारों ओर शुद्ध प्राण वायु में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है।

उत्सव की सामुदायिकता, मिलजुलकर हँसना, गाना, नाचना, मुस्कुराना, दूसरों से जुड़ना जीवन के उत्स के आवश्यक तत्व हैं, यह सत्य हम जानते तो हैं पर हमारे जीवन से जीवन रस की यह तत्व सूखते जा रहे हैं। सुखी जीवन जीने की यह कला हमें जनजातीय समुदायों से यह सीखने की जरूरत है।

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।

संतोष मूलं हि सुखं दुखमूलं विपर्ययः। मनु स्मृति के श्लोक को हम सदियों-सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी रटते पढ़ते आए पर इसके मूलार्थ यानि कि "अगर हम सुख चाहते है तो हम मुख्य रूप से सन्तोष की भाव भावना को धारण के संयमित जीवन व्यतीत करें। क्यों कि सन्तोष ही सुख का मूल है और उसके विपरीत असंतोष दुख का कारण है", को ही हम पूरी तरह से भूल चुके हैं। हमारे वर्तमान जीवन के आचार विचार में संतोष की भावना को व्यक्ति तथा समाज की उन्नति तथा विकास का विरोधी तत्व माना जाता है। किंतु इस अनियंत्रित असंतुलित विकास ने हमें जिस महाविनाश के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है, वहाँ हमें एक बार ठिठक कर फिर से मानव जीवन की दशा दिशा व जीवन दर्शन पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। इस खतरनाक मोड़ पर हमारे बचे खुचे आदिपूर्वज जनजातीय समुदाय हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं और हमें प्रकृति के साथ तादात्म्य बिठाते हुए संतुलित सुखी जीवन जीने की कला तथा 'संतोषं परम सुखम' की असल परिभाषा एक बार फिर सिखा सकते हैं। पर यह सीखने के लिए इसके लिए हमें वापस अपनी जड़ों की ओर लौटना होगा। अपनी थोथी सभ्यता के दंभ का केंचुल उतार कर इन जनजातीय समुदायों के पास शिष्य भाव से जाना होगा। आपकी यह प्रिय पत्रिका ककसाड़ इस महती कार्य में अपने सीमित संसाधनों के साथ यथाशक्ति यथासंभव मार्गदर्शक की भूमिका निभाने की पिछले एक दशक से प्रयास कर रही है। हम अपने इन प्रयासों में कितने सफल हो पा रहे हैं, इसका मूल्यांकन तथा अंतिम निर्णय तो आपको ही करना है। इसीलिए हमें आपके पत्रों तथा संदेशों की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है। तो एक बार फिर अब बारी है आपकी,आप बिना झिझके पत्रिका की सामग्री, मुखपृष्ठ आदि के बारे में अपने निष्पक्ष सुझाव,मार्गदर्शन, आलोचनाएं, निष्कर्ष हमें ईमेल, पत्र, संदेश द्वारा यथाशीघ्र भेजने का कष्ट करें।

इसके साथ ही अगले अंक तक के लिए विदा।

आपका

डॉ. राजाराम त्रिपाठी
मो. 94252-58105

# समाज सदैव समय के सापेक्ष गतिमान होता है

## (डॉ. अमिता दुबे प्रधान संपादक उ.प्र. हिंदी संस्थान से कुसुमलता सिंह की बातचीत)

**परिचय–** 15 मार्च 1967 लखनऊ में जन्मी डॉ.अनिता दुबे ने एम.ए (हिंदी, अर्थशास्त्र), एल.एल.बी. 'गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य में आक्रोश का स्वर' विषय पर पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की है। इनकी अनेक पुस्तकें तथा कहानी संग्रह, उपन्यास, काव्य संग्रह, समीक्षा की 46 पुस्तकें प्रकाशित हैं। इनकी अनेक कृतियों के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किए गए हैं। और कई पुरस्कृत कृतियाँ हैं जिन पर विभिन्न साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सैकड़ों सम्मान दिए गए हैं। उनमें से कुछ 'पुनर्वास'- डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ कथाकृति सम्मान-2014, 'दीपक सा मन'- राष्ट्रधर्म गौरव सम्मान-2016, 'सुखमनी'-गजानन माधव मुक्तिबोध सम्मान-2016 'ऐसा मन करता है' -नीरज सम्मान, 2018, एकांतवासी 'शत्रुघ्न-शिक्षाविद् पृथ्वीनाथ भान साहित्य सम्मान-2021 के अतिरिक्त 119 सम्मान।

**डॉ. अमिता दुबे**

**पता–** प्रधान संपादक, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 6 महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ (उ.प्र.)

**मो.** 94155-51878

*प्र. एक सरकारी संस्थान की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी के साथ ही माँ, पत्नी और घर-गृहस्थी से जुड़ी तमाम भूमिकाएँ भी निभा रही हैं। इन सब भूमिकाओं के बीच लेखन को लेकर कोई द्वंद्व तो नहीं रहता ?*

उ. मेरा सौभाग्य है कि 16 नवंबर, 1992 से उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के संपादकीय विभाग में काम करने का अवसर मिला। जब मैंने संस्थान में कार्यभार ग्रहण किया था, तब मेरा विवाह हो चुका था। पति श्री आलोक कुमार दुबे का मित्रवत व्यवहार और सहयोगी स्वभाव मेरी सहजता से दायित्व निवर्हन की शक्ति बनी और आज भी है। माँ सरस्वती की अनुकंपा से मेरा एक दायित्व पूर्ण होता है और दूसरा लक्ष्य मेरे सम्मुख होता है। लक्ष्य प्राप्ति की उत्कंठा और अपने काम के प्रति लगन मुझे किसी द्वंद्व में उलझने ही नहीं देती। यह तथ्य तो स्पष्ट है कि अपने कर्त्तव्य-पथ पर जब भी मैं विचलित हुई हूँ मेरे पति आलोक जी, मेरी बेटी अंशुमा, बेटे अविरल ने मेरा साहस बढ़ाया है। लेखन के प्रति मेरा भाव बहुत दृढ़ है। मैं कुछ नहीं रचती माता सरस्वती मेरी लेखनी को दिशा देती हैं और कृतियाँ आकार ले लेती हैं। जब तक चिंतन-मंथन पूर्ण नहीं हो जाता तब तक सृजन मेरे लिए असंभव है। इसलिए कहीं कोई द्वंद्व नहीं रहता।

*प्र. आपने हिंदी में अनेक विधाओं में रचना की है अपनी कृतियों में उपन्यास को अधिक सशक्त मानती हैं या कहानियों को ?*

उ. मेरी लेखन की प्रिय विधा कहानी है, यद्यपि तीन उपन्यास मेरे आये हैं– उलझन, एकांतवासी शत्रुघ्न व अमृतायन जिन्हें पाठकों का स्नेह प्राप्त हुआ। मेरी कहानियों को भी प्रशंसा मिली।

*प्र. आप अपने उपन्यास या कहानियों के लिए क्या कथ्य योजना बनाती हैं ?*

उ. मेरा प्रथम उपन्यास 'उलझन' वर्ष 2015 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास किशोरवय के मनोभावों का चित्रण करने वाला था। उस समय मेरे बच्चे किशोरावस्था में थे उनकी बातचीत, उनके मित्रों की बातचीत, उलझनें और वयःसंधि की उलझनें इस उपन्यास का आधार बनीं। देखा जाय तो हमारी पीढ़ी जिसने साठ के दशक में जन्म लिया है, ऐसी पीढ़ी है जिसे पूर्वज पीढ़ी के

**कुसुमलता सिंह**

प्रबंध एवं परामर्श संपादक, ककसाड़

**मो.** 99682-88050

साथ-साथ भावी पीढ़ी के बीच सेतु बनने का सौभाग्य मिला। यही इस उपन्यास का पाथेय है।

दूसरा उपन्यास कोरोना काल में लिखा गया। यह उपन्यास रामकथा के लगभग उपेक्षित पात्र शत्रुघ्न के जीवन के उन अनछुए पक्षों को रेखांकित करने का प्रयास है जहाँ एकांत का सृजन होता है यह एकांत मेरा एकांत भी था। मेरे पिता का एकांत भी था और रघुकुल शिरोमणि श्रीराम के अनुज सुमित्रनन्दन शत्रुघ्न का एकांत भी था।

तीसरा उपन्यास 'अमृतायन' आया जिसका केंद्रीय भाव आजादी की लड़ाई में कलम को अस्त्र बनाकर समाज की मशाल बनने वाली महिलाओं की गाथा को एक माला में पिरोते हुए कथासूत्र बुने गये हैं। इस प्रकार तीनों उपन्यास अलग-अलग पृष्ठभूमि के हैं। परंतु उनकी आधारशिला हमारा परिवेश हमारा समाज ही है।

*प्र. आप उपन्यास, कहानी, व्यंग्य, कविता आदि कई विधाओं में लिखती हैं, तो ऐसे में किस विधा को अपने दिल के करीब पाती हैं ?*

उ. एक लेखक के लिए उसकी अपनी सभी रचनाएँ अपने दिल के करीब होती हैं। मेरे लिए तो मेरी वह पंक्ति जो किसी को प्रभावित कर सके मेरे अत्यंत निकट होती है।

*प्र. भाषा किसी संस्कृति और समुदाय से उस व्यक्ति का संबंध तय करती है। अनेक आँचलिक भाषाएँ लुप्त होने की कगार पर हैं उनके भविष्य के बारे में आपके क्या विचार हैं?*

उ. हम वैश्विकरण के इस भागते दौड़ते युग में आँचलिकता से दूर हो रहे है। हमारा खान-पान, पहनावा, सोच-विचार, सब आधुनिक हो गये हैं लेकिन सोंधी मिट्टी की सुगंध तो आँचलिकता में ही मिलती है। आँचलिक भाषाओं का प्रयोग कम अवश्य हुआ है परंतु हिंदी वह समद्ध भाषा है जिसके पास 'रामचरित मानस', 'सूर सागर' जैसे ग्रंथ हैं वहाँ आँचलिकता पर कोई संकट अधिक दिन ठहर नहीं सकता।

*प्र. आज के परिवर्तित समय और समाज में हमारा प्राचीन समाज विज्ञान आधुनिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में कहाँ तक प्रासंगिक हो सकता है ?*

उ. हमारा समाज न आधुनिक होता है न प्राचीन। समाज सदैव समय के सापेक्ष गतिमान होता है। आधुनिकता और पुरातनता में झीना सा आवरण समय की शिला पर महत्वपूर्ण रच देता है। इसलिए कुछ नहीं बस समय प्रासंगिक होता है स्थितियाँ परिस्थितियाँ स्वतः सृजित हो जाती हैं।

*प्र. आपका उन साहित्यकारों के बारे में क्या विचार है जो आदिवासी नहीं होकर भी जनजातीय चेतना से प्रभावित होकर लेखन के प्रति समर्पित हैं ?*

उ. साहित्यकार की अनुभूति दो प्रकार की होती है एक ओर भोगा हुआ यथार्थ होता है तो दूसरी ओर अनुभव जनित यथार्थ। आवश्यक नहीं है कि यथार्थ को भोगा ही जाय दूसरों की अनुभूति की अभिव्यक्ति भी सार्थक होती हैं।

*प्र. क्या आप मानती हैं की मानवीय गरिमा के लिए सांस्कृतिक चेतना का प्रवाह आवश्यक तत्व है ?*

उ. मानवीय गरिमा का संबंध सांस्कृतिक चेतना से बहुत गहरा होता है। सांस्कृतिक चेतना हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करती है। परिवेश से समांजस्य स्थापित करने में सहायक होता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संस्कार सांस्कृतिक चेतना से ही स्थानांतरित होते हैं, इसलिए आवश्यक है सांस्कृतिक चेतना के प्रति हमारा लगाव जिससे मानवीय गरिमा बनी रहे।

*प्र. क्या वर्तमान में क्लासिक की प्रासंगिकता कुछ कम हई है ? आपके अनुसार क्लासिक और समकालीनता का आपस में कोई विरोध है ?*

उ. पारंपरिकता जिसे 'क्लासिक' कहा जाता है की प्रासंगिकता भी समय के सापेक्ष ही होती है। समकालीनता क्लासिक को और आगे ले जाती है। आधुनिकता बोध समकालीनता को परिलक्षित करता है तो पारंपरिकता का स्पष्ट आधार हमारे गौरवशाली अतीत से है। अतीत सदैव वर्तमान की धरोहर होता है जिसे भविष्य के कर कमलों में स्थानांतरित होना होता है।

*प्र. क्या आपको लगता है कि भारतीय मूल के लेखक जो अंग्रेजी में लिख रहे हैं वह अपने लेखन में समकालीन भारत की भावना को पकड़ने का अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं ?*

उ. भारतीय मूल के लेखक जो अंग्रेजी या किसी भी अन्य विदेशी भाषा में लिख रहे हैं वे समकालीन भारत की भावना को चित्रित करने का प्रयास करते हैं परंतु क्षमा याचना के साथ कहना चाहती हूँ कि वे लेखक कभी-कभी यथार्थ चित्रण के नाम पर विद्रूपता को सामने लाते हुए संसार के सामने वह चित्रांकित करते हैं जो मुट्ठी भर लोगों का यथार्थ होता उनका लेखन यथार्थ के निकट हो सकता है परंतु कीचड़ में पत्थर फेंकने से छींटे अपने ऊपर भी आते हैं।

*प्र. क्या आप मानती हैं कि सरकारी या गैरसकारी संगठनों के द्वारा दिये गए साहित्यिक सम्मान, जिनकी आजकल बाढ़ सी आ गई है, लेखन में उत्प्रेरक का काम करते हैं ?*

उ. सम्मान या पुरस्कार निश्चित रूप से लेखन में उत्प्रेरक होते हैं परंतु

वे साहित्यकार से अपेक्षाएँ भी बढ़ाते हैं और दायित्वबोध के कारण साहित्यकार की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। परंतु लेखक का अंतिम लक्ष्य पुरस्कार या सम्मान नहीं होता है।

*प्र. आपने ताज़ा क्या पढ़ा? हिंदी के सर्जनात्मक साहित्य के बारे में क्या राय है ?*

उ. मैं समय-समय पर अपने समकालीन रचनाकारों के साथ-साथ अपने प्रिय रचनाकारों की कृतियाँ पढ़ती रहती हूँ इधर 'व्यंजना सृजन की' और 'सृजन को नमन' पुस्तकों के लेखन के मध्य से.रा. यात्री, रामदरश मिश्र, सआदत हसन मंटो, राही मासूम रज़ा, रामस्वरूप खरे आदि रचनाकारों की कुछ-कुछ कृतियाँ पढ़ने का सौभाग्य मिला। हिंदी का सर्जनात्मक साहित्य तटबंधों को तोड़ता हुआ अपनी नयी दिशा तय कर रहा है।

*प्र. नए रचनाकारों को आप भाषा को लेकर रचना विधा के बारे में कोई संदेश देना चाहेंगी?*

उ. मेरा मानना है भाषा की शुद्धता पर साहित्यकार का ध्यान अवश्य होना चाहिए। देश काल और वातावरण के अनुसार पत्रनुकूल भाषा का प्रयोग साहित्य की मूल भावना को पाठकों के सामने लाने में सहायक होता है परन्तु बोलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा सदैव अलग होती है इसलिए भाषा की शुचिता पर साहित्यकार को सजग ही रहना होगा।

*प्र. आप हमारे पाठकों को अपने जीवन के संघर्ष और अनुभव के बारे में कुछ बताएँ ?*

उ. माता सरस्वती की अनुकंपा से मेरे जीवन के समतल में जब भी कुछ चुनौतियाँ आयीं उनका समाहार उनके आर्शीवाद से सहजता से होता गया। मैंने जीवन में जो कुछ भी पाया (या खोया भी) उसे अपने भाग्य से अधिक माना और उसी में संतुष्टि का अनुभव किया। मानव जीवन में संघर्ष न हों तो वह जीवन ही क्या। संघर्षों को चुनौती मानकर कर्मरत रहना मेरे जीवन का ध्येय रहा है और आगे भी रहेगा।

*प्र. लघु पत्रिकाओं जिसमें ककसाड़ भी है उसे आज के साहित्यिक परिदृश्य पर कहाँ पाती हैं?*

उ. अपने संसाधनों से पत्रिका का प्रकाशन करना स्वयं में दुरुह कार्य है। पत्रिका, पत्रिका होती है मेरी दृष्टि में लघु और दीर्घ पत्रिकाओं में कोई भेद नहीं होता श्रम उतना ही होता है। संपादक का दृष्टिकोण पत्रिका की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। ककसाड़ पत्रिका अपने सुंदर कलेवर, गंभीर साहित्यिक चिंतन-मनन का स्पष्ट दृष्टिकोण रखती है। सृजनात्मकता जब किसी वाद-प्रतिवाद से अलग हटकर अग्रसर होती है तब 'ककसाड़' जैसी पत्रिका अस्तित्व में आती हैं, शुभकामनाएँ। ❑

---

लघुकथा

# तलवार सोने की बन गयी

अकबर के दरबार में बीरबल की बुद्धिमानी का लोहा सभी मानते थे। किसी को कोई काम करवाना होता, तो वह बीरबल की शरण में चला जाता था। एक दिन एक बुढ़िया अपनी विधवा बहू के साथ बीरबल के पास गयी। उसने कहा, 'मेरे बेटे ने बीस साल तक आपकी सेना में सेवा की। उसके शहीद होने के बाद हम बेसहारा हो गये। हमारी कुछ मदद कराने में कृपा करो।' बीरबल ने उसे कुछ समझाया और अगले दिन दरबार में पहुँचने को कहा। अगली सुबह बुढ़िया ने दरबार में पहुँचकर अकबर का अभिवादन किया और अपने शहीद बेटे की तलवार दिखाते हुए कहा, 'जहाँपनाह! इस तलवार से मेरे बेटे ने आपके लिए कई लड़ाइयाँ लड़ीं, उसने जंग में कभी पीठ नहीं दिखायी। हुजूर! इस तलवार को अपने शस्त्रागार में स्थान दीजिये।'

अकबर ने बुढ़िया से तलवार अपने हाथ में ले ली। उसने तलवार को ध्यान से देखा और सोचने लगा कि यह जंग लगी तलवार मेरे किस काम आयेगी? उसने उस तलवार को एक सैनिक के हवाले करके कहा, 'यह तलवार इन्हें वापस कर दो और सोने की पाँच मोहरें भी इन्हें दे दो।' बीरबल ने जब यह सुना तो उसे धक्का-सा लगा, केवल पाँच मोहरें! सोचने लगा। उसने बादशाह से कहा, 'आलमपनाह! क्या मैं यह तलवार देख सकता हूँ।' अकबर को इसमें क्या

(शेष पृष्ठ 36 पर )

# ब्लैंक कॉल

• डॉ. अमिता दुबे •

'ट्रिन-ट्रिन, ट्रिन-ट्रिन, ट्रिन-ट्रिन।'

'हैलो-हैलो कौन बोल रहा है हैलो' अरे भाई कुछ बोलो तो।

मानसी की आवाज है। कुछ देर हैलो-हैलो होने के बाद फोन रख दिया जाता है। इसका अर्थ है मानसी अभी भी मम्मी के साथ रहती है।

अब ये फोन की 'ब्लैंक कॉल्स' ही मेरे जीने का सहारा हैं। वैसे मेरे जीवन में बचा ही क्या है ? मैंने सब कुछ खो दिया अपना घर, परिवार, नाम, पहचान, वेशभूषा यहाँ तक कि आवाज भी। मैं अब दुनिया के लिए एक गूंगा हिन्दुस्तानी हूँ जिस पर दयाकर कभी कोई काम दे देता है कभी कोई रोटी और कभी कोई गालियों से भी विभूषित करता है। गालियाँ यह समझकर दी जाती है कि गूंगा है क्या जवाब देगा। सच पूछें तो अब मेरा खून भी पहले की तरह नहीं खौलता।

मैं अपने माँ बाप की इकलौती संतान। मेरे नखरे उठाने वाली मेरी माँ मेरे बचपन में ही स्वर्ग सिधार गयी। हॉस्टल के कड़े अनुशासन में रहते हुए मेरी छुट्टियाँ ज्यादातर मौसी-नानी के पास बीततीं। बाद में मेरा रूम मेट अपूर्व मेरे सुख-दुख का साथी बना। मैं घर के नाम पर उसके घर को जानने लगा। त्योहारों पर जब उसकी माँ आग्रहपूर्वक हमें बुलातीं तो मेरे मन में कसक उठती। माँ की धुँधली छवि मेरी आँखों के आगे घूम जाती।

धीरे-धीरे मेरे स्वभाव में एकांतप्रियता घर करने लगी। अब मैं भीड़ में अकेला होने लगा। हमारे विद्यालय में संगीत अध्यापक ही हमारे वार्डेन थे। जब वे अपने कमरे में रियाज करते तो मैं खिड़की के पास खड़ा होकर उन्हें सुनता रहता। एक दिन मेरी चोरी पकड़ी गयी। जयंत सर मेरी लगन को देखकर बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने रियाज के समय मुझे अपने पास बैठने की छूट दे दी।

अंधा क्या चाहे दो आँखें। मैं नियमित बैठने लगा। इन दो घण्टों की प्रतीक्षा मुझे दिन भर रहती। अब मेरी झिझक काफी कुछ कम हो गयी थी। जब सर गाते तो मैं उनके सुर में सुर मिलाता। कभी गलत होता तो सर रोककर ठीक कर देते। इस प्रकार तीन महीनों में मैं संगीत की ए-बी-सी-डी सीख गया। यह सर का ही आशीर्वाद है कि आज तक यह संगीत ही मुझे बचाये हुए है। जब बंद कमरे में मैं गुनगुनाता हूँ तो लगता है जिंदा हूँ। बाद में मेरा चयन एन.डी.ए. में हो गया। इस परीक्षा के लिए मैंने कड़ी मेहनत की थी। अपने अध्यापकों और पापा की आशाओं पर खरा उतरते हुए मैं ट्रेनिंग पर जा रहा था। मेरे विद्यालय में मेरी विदाई का दिन था उस दिन पापा भी आ गये थे। दोस्तों और शिक्षकों ने एक पार्टी मेरे सम्मान में रखी थी। पापा आगे बैठे थे। जयंत सर के आग्रह पर मैंने एक गाना गाया यह गीत हम अक्सर गाते रहते थे—

'हम होंगे कामयाब हम होंगे कामयाब

हम होंगे कामयाब एक दिन

मन में है विश्वास पूरा है विश्वास

हम होंगे कामयाब एक दिन।'

मेरा गीत पूरा होने पर जयंत सर ने मेरी पीठ ठोंकी और मैंने भावुक होकर उनके पैर छुए। बाद में मेरे कहने पर उन्होंने भी प्रयाण-गीत गाया था-

'उठ जाग मुसाफिर भोर भई,

अब रैन कहाँ जो सोवत है।

जो सोवत है सो खोवत है,

जो जागत है सो पावत है।'

आज भी यह शब्द मेरे कान में गूँजते हैं। तब भी गूँजते थे जब मैं हिमाच्छादित चोटियों पर अपनी सीमा की सुरक्षा के लिए तैनात था। मेरा मन हिलोरे लेता रहता था और मैं तरन्नुम में गाता रहता था। मेरी आवाज जब घाटी से गूँजकर मेरे कानों में टकराती थी तब मैं रोमांचित हो जाता था। कभी-कभी तो इतना भावमुग्ध हो जाता था कि मुझे याद ही नहीं रहता था कि मेरे साथी पीछे छूट गये हैं और मैं खतरनाक क्षेत्र में प्रवेश करने वाला हूँ। उस समय मेरे लिए कोई खतरा नहीं था। मुझे किसी का डर नहीं था।

अपनी ट्रेनिंग के मध्य मुझे तीन-चार बार अपनी धैर्यहीनता के कारण सजा भुगतनी पड़ी थी लेकिन

उस सजा को देने वाले अधिकारी भी मेरी हिम्मत की प्रशंसा करने में पीछे नहीं रहते थे। मेरा भाग्य था कि मुझे हर जगह मान-सम्मान देने वाले, प्यार करने वाले अधिकारी या गुरु मिले। यहाँ बेनर्जी साहब का अनुशासन था। जब वे ग्राउंड में होते तो कड़क अफसर होते लेकिन बाहर निकलते ही सहृदय पिता बन जाते। मुझे समझाते-'तुम अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखो। एक सैनिक को जाबांज होना चाहिए लेकिन चेहरे पर मन के भाव नहीं आने चाहिए। कोई न जान पाये कि तुम्हारे मन में क्या चल रहा है। तुम्हारी कमी यह है कि तुम्हारा गुस्सा, तुम्हारे इरादे की चुगली खाता है।'

मैं कहता, 'सर आप तो दोहरा व्यक्तित्व जीने के लिए कह रहे हैं।'

वह कहते, 'हाँ जवान! एक सैनिक को कई रूप धारण करने पड़ते हैं। कभी नरम, कभी गरम, तो कभी करम।' यह कहकर वह आकाश की ओर हाथ उठाकर ठठाकर हँसते और उनकी हँसी में मेरी हँसी भी मिल जाती। उनके कई बार चेतावनी देने पर भी मेरे व्यवहार की धैर्यहीनता समाप्त नहीं हुई। और अन्ततः मेरा जीवन नष्ट हो गया।

पहली नियुक्ति के बाद दो वर्षों तक कोई अवकाश नहीं मिला। सच पूछो तो मुझे अवकाश की आवश्यकता भी नहीं थी। मेरी प्रतीक्षा करने वाला घर में कौन बैठा था। पापा थे तो उनसे कभी-कभार बात हो जाती थी। इस बार दो महीनों का अवकाश लेकर मैं 'घर' जा रहा था। वह 'घर' जिसके प्रति मेरे मन में कभी मोह था जो अब समाप्त हो चुका था। पापा मुझे स्टेशन पर लेने आये। इस बार घर जाने के लिए मैं मानसिक रूप से तैयार होकर आया था। कुछ रिश्ते वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे जिन्हें अबतक मैं भूले बैठा था

बचपन से ही यह बात घर कर गयी थी कि नयी मम्मी के कारण ही मुझे हॉस्टल में रहना पड़ा है। जैसे-जैसे हॉस्टल का एकांत, वहाँ का खाना, अनुशासन और भावुकता याद आती। मम्मी के प्रति आक्रोश बढ़ जाता। ज्यादातर मैं मम्मी से बात ही नहीं करता। यदि फोन वे ही उठातीं तो दो चार औपचारिक बातें करके पापा से बात करता। हालांकि मैं पापा को भी दोषी मानता था। क्या वे मेरे लिए अकेले नहीं रह सकते थे। ये सब बचपन की बातें थीं। अब मैं बड़ा हो गया था। घर पहुँचने पर नयी मम्मी जिन्हें मैं अबतक बड़ी बदतमीजी से आंटी सुमंगला कहता था गेट पर ही मिल गयीं। उनके साथ तेरह-चौदह वर्ष की एक प्यारी सी लड़की खड़ी थी। निश्चय ही यह मयूरिका होगी। 'मम्मी कैसी हैं आप, कहते हुए उनके मैं सामने जाकर खड़ा हो गया और उनके चरण स्पर्श किये। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया। सच मानिये मुझे बड़ी गरमाहट मिली जो एक माँ की छाँव में मिलनी चाहिए। पापा तब तक नीचे उतर आये थे। हम चारों की आँखें नम थीं जैसे न जाने कितने जन्मों के बिछुड़े मिल रहे हों। मैं तो प्यार के लिए तरसा हुआ प्राणी था ही। हम साथ-साथ घर के अंदर प्रविष्ट हुए। घर का एक-एक कोना, सजीव हो उठा था।

पंद्रह दिन कैसे बीते पता ही नहीं चला। मम्मी-पापा ने पिछले पंद्रह वर्षों की कसर पूरी कर दी। डाइनिंग टेबिल पर मेरी पंसद पूछ-पूछकर व्यंजन सजाये जाते मैं और मयूरिका रुच-रुचकर और लड़-झगड़कर खाते मैं उसे छेड़ता वह चिढ़ जाती फिर खूब बहस होती कभी-कभी मार-पीट भी। मैं वास्तव में अपने बचपन को जी रहा था। आंटी सुमंगला जिन्हें मैं अब मम्मी कहने लगा था ने मेरे सूने जीवन को भर दिया था।

एक दिन मम्मी से मिलने उनकी सहेली अपर्णा मौसी आयीं उनके साथ एक लड़की भी थी। वह इस घर के कोने-कोने से परिचित थी बस नहीं जानतीं थीं तो मुझे। मम्मी ने परिचय कराया-'मानसी! यह मेरा बेटा मानस है। सेना में ऑफीसर है तुम दोनों एक दूसरे को जान समझ लो तो अच्छा है।' जैसे वह कुछ तय किये बैठी थीं।

अगले पंद्रह दिन मानसी के चक्कर लगाते कटे और उसके पंद्रह दिन शादी-ब्याह बारात में। मम्मी ने बहुत अच्छी तरह मेरी शादी की व्यवस्था की। उनके चेहरे के भाव बता रहे थे कि उन्हें हार्दिक प्रसन्नता मिल रही थी।

धीरे-धीरे मेरे जाने का समय समीप आ गया। पहली बार मुझे घर, घर-सा लगा और घर से जाते हुए कुछ दरका। यह दरक मीठी-मीठी थी। वापसी की चाह लिये हुए।

सीमा पर रिपोर्ट करते समय मेरा मन उदास था। छह महीने बीते। घर से फोन द्वारा संपर्क होता रहता था। पापा को हार्ट-अटैक पड़ा। यह खबर मुझे मिली लेकिन छुट्टी नहीं मिली। एक महीने पापा अस्पताल में रहे लेकिन मैं अभागा घर नहीं जा सका क्योंकि मैं छुट्टी बिताकर आया था और मेरा रिलीवर अभी छुट्टी से लौटा नहीं था। घर से मानसी का फोन आया पापा नहीं रहे। यह खबर मुझे हिला गयी लेकिन

मुझे तत्काल छुट्टी फिर भी नहीं मिली। जब मैं घर पहुँचा पापा को अग्नि को समर्पित किया जा चुका था और मम्मी की हालत बहुत खराब थी। मुझे उन्हें सांत्वना देने के लिए वहाँ होना चाहिए था लेकिन मैं सीमा की रखवाली कर रहा था। मुझे दुख के साथ-साथ क्रोध भी था हम सैनिकों की मनोभावनाओं को समझने वाला कोई नहीं है क्या? क्या हम सब भाव शून्य होते हैं ? क्या हमारा परिवार, घर, समाज के प्रति कोई दायित्व नहीं होता।

मानसी माँ बनने वाली थी पंद्रह दिन बाद। लेकिन मैं रुक नहीं सकता था। मुझे जाना था। आकस्मिकता को देखते हुए मुझे चार दिन की आपातकालीन छुट्टी मिली थी। मुझे रिपोर्ट करना था। सीमा पर आसार अच्छे नहीं थे। मैं, मम्मी, मयूरिका और मानसी को छोड़कर भीगे मन से वापस लौट गया। एक दिन घर से फोन आया मानसी ने गोल-मोल बच्ची को जन्म दिया है उसकी शक्ल बिल्कुल पापा जैसी है। जैसे पापा ही लौट आये हों। मानसी ने फोन पर बच्ची के रोने की आवाज सुनायी। मैं हर्ष, दुःख और क्षोभ से भर उठा। मैं अपनी बच्ची को देखने भी नहीं जा सकता। मैं जाऊँगा अवश्य जाऊँगा।

मैंने अपने कमानडेंट से छुट्टी माँगी। उन्होंने रूखे स्वर में कहा, 'तुम्हें कितनी छुट्टी चाहिए। अभी पिछले महीने छुट्टी से वापस आये हो। पूरी यूनिट में तुम ही अकेले नहीं हो जिसके घर में समस्याएँ हैं यहाँ हर कोई घर-बार छोड़कर आया है। किसी के बूढ़े माता-पिता बीमार हैं किसी की बहन की शादी है तो किसी का भाई घोड़ी चढ़ रहा है।'

'लेकिन सर मुझे अपनी बच्ची को देखना है। पत्नी ने बताया है कि उसकी शक्ल मेरे पापा से बहुत मिलती है।'

'अच्छा, बधाई हो! तुम बाप बन गये हो बच्ची की शक्ल तो वही रहेगी बदलने वाली नहीं है। तुम्हें अगले दस महीने तक छुट्टी नहीं मिलेगी। हाँ उसके बाद एक हफ्ते की मिल सकती है।'

'लेकिन मुझे छुट्टी चाहिए। मुझे अपनी बेटी को देखना है।'

'बेकार में बहस मत करो।'

'मुझे छुट्टी चाहिए सर और जरूर चाहिए।'

'क्यों उलझ रहे हो जवान! आदेश का पालन करो।'

'मुझे छुट्टी चाहिए किसी भी हालत में।' मेरी आवाज तेज होने लगी।

'मैंने कह दिया तुम्हें छुट्टी नहीं मिल सकती। जो करना चाहो कर लो।'

यह कहकर ऑफीसर पलट गया। और मैंने, हाँ मैंने, उस पर अपनी साइलेंसर लगी बंदूक से गोली चला दी। उसकी ललकारती आवाज मुझे बेकाबू कर गयी। दनादन दो गोलियाँ उसकी पीठ को छेद गयीं। वह धड़ाम से गिर पड़ा। तब मुझे होश आया। जब तक लोग इकट्ठा होते कुछ समझते उससे पहले मैं वहाँ से भाग आया। मेरा एक साथी जो मेरी परिस्थितियों से परिचित था, ने मुझे दूर भाग जाने में मदद की। कुछ रास्ता उसकी गाड़ी से कटा बाद में पैदल-पैदल भागते-छुपते मैं भारत की सीमा पारकर नेपाल में प्रवेश कर गया। तब से यहाँ हूँ। कभी किसी शहर, कभी किसी गाँव, कभी किसी कस्बे में कुछ दिन रहता हूँ। फिर चल पड़ता हूँ अनजानी राह की ओर।

मुझे नहीं पता मेरी खोज में क्या-क्या हुआ। मेरा मोबाइल वहीं रह गया था। कुछ दिन बाद कुछ सम्हला तो घर से संपर्क साधने की कोशिश की। कई बार फोन किया 'ब्लैंक कॉल'। कभी मानसी की आवाज कभी मम्मी की और कभी मयूरिका की। मेरे सारे फोन अलग-अलग टेलीफोन बूथ से होते हैं। मैं अक्सर घर पर फोन करता हूँ लेकिन कभी बात करने का साहस मुझमें नहीं हुआ। वे लोग मेरे बारे में क्या सोचते होंगे। मैं उनका प्रिय बेटा, भाई, पति एक जाबांज सैनिक की जगह हत्यारा बन गया। वह भी अपने जैसे ही सीमा के प्रहरी का। अब जब भी उनकी याद आती है ब्लैंक कॉल कर लेता हूँ। उधर की आवाज सुनकर तृप्त हो जाता हूँ ये आवाजें ही मुझे नयी ऊर्जा देती हैं। अभी कल ही मैंने एक नयी आवाज सुनी है, मीठी बहुत मीठी आवाज, यह निश्चय ही मेरी बेटी की ही होगी जिसका नाम मैंने 'मुस्कान' रखा है। मैं चल पड़ा हूँ फिर से वह आवाज सुनने। काश 'मुस्कान' ही फोन उठाये। ❑

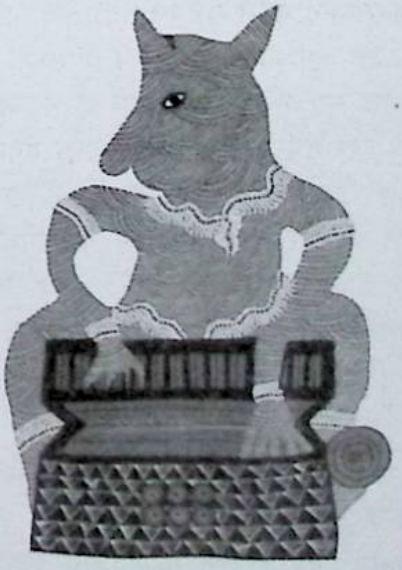

जनजातीय कला

# अजंता की गुफाएँ : अविश्वसनीय आश्चर्य

• अखिलेश निगम 'अखिल' •

भारत देश की प्राचीन धरोहरों का जब हम लोग सूक्ष्म अवलोकन एवं विश्लेषण करते हैं तो एक विस्मयकारी सुखद अनुभूति होती है, मन की गति ठहर जाती है। नेत्र अपलक उसके सौंदर्य को निहारने लगते हैं शब्द मौन हो जाते हैं हृदय में उमंग एवं आनंद का सागर उमड़ने लगता है तथा मस्तिष्क में विचारों के झंझावत उठने लगते है कि उस समय के कलाकारों ने किस प्रकार सीमित संसाधनों से बेजोड़ कलाकृतियों एवं धरोहरों को सजीव स्वरूप प्रदान किया।

अजंता की गुफाओं को देखने के पश्चात ही ऐसा ही सुखद अनुभव हुआ। गुफाओं की दीवारों एवं छतों की चित्रकला एंव मूर्तिकला आज भी जीवंत एंव बेजोड़ है, इन गुफाओं का अवलोकन करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग किसी अन्य लोक में पहुँच गए हैं। सैकड़ों वर्षों के पश्चात भी उस समय के कलाकारों द्वारा बनाए गए चित्र दर्शकों को विस्मय में डाल देते हैं और हम लोगों को यह सोचने पर विवश कर देते हैं कि जब यह चित्र बनाए गए होंगे तब उनके सौंदर्य एंव चित्रकला का क्या स्तर रहा होगा वास्तव में यह कल्पना से परे है।

वर्ष 2018 में मध्य प्रदेश विधान सभा चुनाव में बुरहानपुर जिले में चुनाव आयोग द्वारा मुझे पुलिस प्रेक्षक (पुलिस आब्जर्वर) नियुक्त किया गया था, बुरहानपुर जिला मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र प्रांत का सीमावर्ती जिला है चुनाव के पश्चात मेरे द्वारा अवकाश ले लिया गया था और अवकाश के दौरान मुझे अंजता की गुफाओं की चित्रकला एवं शिल्पकला को देखने एवं सूक्ष्म अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

अजंता में कुल 29 गुफायें देखने को मिलती हैं जिनमें बुद्ध के जीवन के विभिन्न दृश्यों को बड़ी खूबसूरती से चित्रों एंव मूर्तियों के माध्यम से उकेरा गया है। गुफाओं की दीवारों एंव छतों पर की गई चित्रकारी में जातक कथाओं एवं बोधिसत्व के पूर्व जन्म की अनेक कहानियों का चित्रांकन किया गया है।

अजंता की गुफायें पाँचवी से सातवीं शताब्दी तक तराशी गई हैं। गुफाओं की खुदाई का मुख्य कार्य वाकाटक राजाओं के शासन काल में विशेष रूप से हुआ है। पाँचवी शताब्दी के अंतिम 50 वर्षों से लेकर छठीं शताब्दी के पूर्व के 50 वर्षों का काल कुल मिलाकर यह सौ वर्ष शिल्पकला और चित्रकला के लिए स्वर्ण युग माने जाते हैं सातवीं शताब्दी के बाद इन गुफाओं की खुदाई का काम धीमा होता गया, जो गुफायें अधूरी रह गईं उनमें से कुछ अधूरी होते हुए भी देखने लायक हैं। इन गुफाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गुफाओं को तराशते समय छत से प्रारंभ करते हुए नीचे तक गुफा की शिल्पकला की रचना की गई है। गुफा निर्माण में औजार के रूप में कुदाल तथा छोटी-बड़ी छेनी हथौड़े का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया गया है। जगह-जगह पर खंभों का आधार दिया गया है और छोटे-बड़े हाल निकाले गए हैं। यहाँ भी पहले गुफा के सामने का दर्शनीय भाग बनवाकर अंदर का काम किया गया है. इससे यह पता चलता है कि कलाकारों हेतु पहले ड्राइंग हाल की सुंदर रचना करने के बाद में अंदरूनी स्थलों की रचना करने का था। जिसके कारण आज अजंता की गुफायें विश्व प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक युग में ये गुफायें बुद्धिजीवी वर्ग की दृष्टि से ओझल रहीं। वर्ष 1819 में ब्रिटिश सेना अधिकारी जॉन स्मिथ जब खोज अभियान पर निकले तो अचानक वह इन गुफाओं तक पहुँच गये।

अखिलेश निगम 'अखिल'
पता– ओम निवास, 51-क्ले स्क्वायर, कबीर मार्ग, लखनऊ-226001 (उ.प्र.)
मो. 97932-74150

जब मैं अजंता गुफाओं के पास एक ऊँची पहाड़ी से वह दृश्य देखा तो मुझे इन गुफाओं का विस्तार घोड़े की एक नाल की तरह लगा। वास्तव में अजंता की गुफायें अंग्रेजी के अक्षर यू (U) की तरह दिखाई देती हैं। ये गुफायें अजंता की पहाड़ी चट्टानों पर फैली हुई हैं। यहाँ गुफा नं. 8 सबसे नीचे तथा गुफा नंबर 29 पहाड़ की चोटी पर स्थित है। इन गुफाओं में चित्रकला और शिल्पकला अपने आप में बेजोड़ है। गुफा नं0 1, 2, 16 एवं 17 की चित्रकला अत्यंत सम्मोहक एवं अनूठी है।

अजंता की विभिन्न गुफाओं की दीवारों एवं छतों पर बड़ी बारीक पेंटिंग की गई है, यहाँ की चित्रकला में बुद्ध के जीवन पर आधारित कथा एवं जातक कथाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है। तत्कालीन समाज तथा उस समय के राजा, स्त्री-पुरूष, फल-फूल एवं पशु-पक्षियों की भी आकृतियों बनाई गई है। तथा मनुष्य के विभिन्न भावों जैसे हर्ष-विषाद, जय-पराजय, जीवन-मृत्यु प्रेम, घृणा, दुःख सुख आनंद आदि का बखूबी चित्रण किया गया है, इनमें उस काल के रहन-सहन वस्त्र-आभूषण, अलंकार, अस्त्र-शस्त्र, संगीत के विभिन्न यंत्र भी प्रदर्शित किए गए हैं उस समय के लोग देवी-देवताओं पर भी आस्था रखते थे, उनका भी यत्र-तत्र चित्रांकन हुआ है।

मैंने अजंता की गुफाओं के बारे में सूक्ष्म अध्ययन एवं जानकारी के लिए एक कुशल गाइड को अपने साथ में ले लिया जिससे वहाँ के बारे में समझना आसान हुआ। अजंता चित्रशैली के बारे में शोध से यह बात उभर कर सामने आई है कि कलाकार पेंटिंग से पहले दीवाल एवं छत पर धातुमिश्रित मिट्टी लेकर उसमें चट्टानों से मिलने वाले पत्थरों के बारीक वनस्पतियों के तन्तु, चावल का भूसा एवं रेत आदि का मिश्रण लगाते थे आखिर में यह नींबू पानी से धोकर दीवार एवं छत को पेंटिंग के लिए तैयार करते हैं, चित्र बनाने से पहले आउटलाइन बनाकर विभिन्न प्रकार के रंग भरे जाते थे, यहाँ की चित्रशैली अजंता चित्रशैली के नाम से विश्व भर में प्रसिद्ध हुई है। और अपनी अलग पहचान रखती है।

अजंता की गुफा नंबर एक में बीस खंभों का एक बड़ा हाल है यहाँ अनेक जातक कथायें चित्रित की गई हैं जो कि महात्मा बुद्ध के पिछले जन्मों से संबधित है पूजा स्थल पर बुद्ध की एक विशाल मूर्ति है जिनके मुख पर प्रकाश पड़ने पर तपस्या और शांति के भाव प्रदर्शित होते हैं। पूजा स्थल के निकट एक दीवाल पर विश्व प्रसिद्ध बुद्ध का चित्र है जो बोधिसत्व पद्मपाणि के रूप में प्रसिद्ध है, यह अजंता चित्र समूह का सबसे सुंदर चित्र है युद्ध के हाथ में कमल पुष्प शांति और पवित्रता का प्रतीक है, मस्तक पर पुष्प तथा मणि रत्नों से जुडा हुआ सुंदर मुकुट, भव्य माथा, तिरछी कमानदार भौहें सीधी नाक या सुंदर ओठ है शरीर में बुद्ध के शरीर में विभिन्न प्रकार के वस्त्र तथा गले में मणियों का यज्ञोपवीत एवं बाजूबंद पहने हुए हैं बुद्ध तीन जगह गर्दन, कमर तथा पैर से तिरछे होकर खड़े हैं जिसे इनका त्रिभंगी स्वरूप भी कहा जाता है यह बुद्ध की राजकुमार के रूप में चित्र है पद्मपाणि के समीप एक सुंदर नारी आकृति है जो कि उनकी रानी का चित्र प्रतीत होता है। महात्मा बुद्ध का यह प्रसिद्ध चित्र इटालियन समकालीन युग के चित्र का मुकाबला करता है तथा यह विश्व के प्रसिद्ध चित्रों में से एक है।

गुफा की एक दीवार पर मारा का चित्र है जो प्यार का देवता है और बुद्ध को रोक रहा है कि वह तपस्या न करें। एसेंबली हॉल में राजा शिवि की कथा को चित्र में दिखाया गया है जिसमें वे कबूतर पक्षी को बाज के चंगुल से बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। एक चित्र में युद्ध की माँ मायावती स्नान कर रही है छत पर कई पक्षियों, फूलों एवं फलों के मन मोहक चित्र है, कुछ जानवरों के भी चित्र बनाए गए हैं इस तरह कई डिजाइन कई परंपरागत साड़ियों एवं शालों पर आज भी नकल किए जाते हैं। एक ऐसा ही अद्भुत चित्र सांड का है जिसे किसी भी कोने से देखे तो लगता है कि वह देखने वाले पर आक्रमण कर देगा।

गुफा नंबर दो में भी एक से बढ़कर एक चित्ताकर्षक चित्र है एक चित्र में बुद्ध की माँ अपना स्वप्न राजा को सुना रहीं हैं तो दूसरे चित्र में युद्ध को उनके माता-पिता प्यार कर रहे हैं एक कमरे में बुद्ध की एक आकृति है जिसकी छत पर हंसों का एक समूह दिखाया गया है, पूजा स्थल के सामने अखाड़ा है जिसमें बुद्ध की अनेक आकृतियों हैं, छत पर एक से बढ़कर एक मनमोहक चित्र उस समय के कलाकारों द्वारा बनाये गए हैं। गुफा नं-4 बहुत विशाल गुफा है जिसके पूजा स्थल पर महात्मा बुद्ध की छह खड़ी मूर्तियों बनाई गई हैं जो कि शिल्प कला की दृष्टि से अति उत्तम है।

चित्रकला की दृष्टि से गुफा नं0-16 व 17 भी अत्यंत महत्वपूर्ण है इन दोनों गुफाओं में अनेक मनमोहक चित्र

हैं जिनमें बुद्ध के जीवन तथा जातक कथाओं का खूबसूरती से चित्रांकन हुआ है एक दृश्य में नंद की माता बेहोश पड़ी है तथा एक परिचारिका उनकी देख देख कर रही है एक चित्र में बुद्ध की माँ अपने पति को अपना देखा हुआ स्वप्न सुना रही हैं और ज्योतिषी उसका अर्थ बता रहा है इस चित्र पर श्री का प्रभाव दिखाई दे रहा है। बुद्ध के बाल अवस्था के कई प्रसंग चित्र अत्यंत सजीव एवं मनमोहक दिखाई देते हैं। कथकली का नृत्य करती हुई नर्तकी का चित्र बरबस ध्यान आकृष्ट कर लेता है, भीतरी पूजा स्थल पर बुद्ध की विशाल आकृति है यहाँ हाथी, घोड़ा, मगरमच्छ के चित्र देखने योग्य हैं। छत का चित्रण भी सुंदर और आकर्षक है इन्ही गुफा में एक दृश्य हाथी का है जिसके कई सूंड़ हैं। एक दृश्य में बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा और बेटे राहुल से भिक्षा माँग रहे हैं यह अत्यंत मार्मिक चित्र है। इन दोनों गुफाओं की छतें इतनी खूबसूरती से बनाई और चित्रित की गई हैं जो कि एक कपड़े की भांति प्रतीत होती हैं जिसके सभी ओर किनारा है छत में परियों एवं अप्सराओं की कथायें चित्रित हैं। बरामदे में भी अप्सरा, हाथी एवं जीवन के विभिन्न दृश्यों को प्रदर्शित करते हुए अनेक चित्र हैं।

अजंता की गुफा नं-6 दो मंजिला है। सभा कक्ष में बुद्ध की पदमासन मुद्रा में बैठी हुई मूर्ति है दूसरी मंजिल पर स्तंभों वाला सभा कक्ष है वहीं सातवीं नंबर की गुफा में वेदी पर बुद्ध की सुन्दर मूर्ति बनाई गई है तथा पीछे की दीवार पर प्रभामंडल के रूप में सुन्दर नक्काशी की गई है। नवीं नंबर की गुफा को अर्द्ध गोलाकार स्वरूप में स्तूप का निर्माण किया गया है छत पर बुद्ध की विविध मुद्राओं के चित्र उकेरे गए हैं। गुफा नं. दस बौद्धों का हीनयान मंदिर है जिसमें स्तूप है जिस पर पाली भाषा की ब्राह्मी लिपि में आलेख अंकित है। एक गुफा में भगवान बुद्ध जनसामान्य को प्रवचन दे रहे हैं।

अजंता की कुछ गुफायें अपूर्ण एवं अधूरी रह गई हैं किंतु उनकी भव्यता, एवं गरिमा में कोई कमी नहीं है इसमें तत्कालीन के कलाकारों द्वारा किया गया परिश्रम तथा चित्रों एवं मूर्तियों के माध्यम से व्यक्त की गई भावनायें आज भी अत्यंत सम्मोहक है। अजंता की छब्बीसवीं गुफा में चौथे कक्ष के भीतरी भाग में बारीकी नक्काशी की हुई अनेक बुद्ध की आकृतियाँ उकेरी गई है मुख्य स्तूप में मंडप में बुद्ध की बैठी हुई विशाल प्रतिमा है यहीं पर बुद्ध के महापरिनिर्वाण की दीवाल पर प्रतिमा उकेरी गई है, यह मूर्ति लगभग सात मीटर लंबी है भगवान बुद्ध दो शाल वृक्ष के बीच में शांत चिरनिदा में हैं उनके मुख पर असीम तृप्ति के भाव है। आकाश से देव पुष्प वर्षा कर रहे हैं तथा नीचे युद्ध के शिष्यगण शोक सागर में डूबे हुए हैं। इसी प्रकार अगली गुफा में चित्र में बुद्ध महापरिनिर्वाण की मुद्रा में दिखाई देते हैं तथा अन्य कई प्रकार के चित्र हैं। अजंता की गुफाओं की चित्रकला एवं शिल्प कला अपने आप में अलौकिक, अदभुत एवं अवर्णनीय है, यद्यपि अनेक चित्रों के रंग धूमिल हो गए हैं तथा कुछ के अवशेष ही दिखाई देते हैं किंतु यह इस बात का भी उद्घोष करते है कि प्राचीन भारत की चित्रकला, शिल्प कला, अध्यात्म एवं साहित्य उत्कृष्ट कोटि का रहा है और उससे सदैव 'वसुधैव कुटुंबकम एवं सर्वे भवंतु सुखिनः' का कल-कल निनाद होता रहा है जो कि आज भी संपूर्ण विश्व को अनुप्राणित कर रहा है। ❑

## क्या है ककसाड़?

*'ककसाड़' तथाकथित विकसित सभ्यता में अल्प-परिचित लगभग अप्रचलित शब्द है। 'ककसाड़' (जतरा या पूजा यात्रा) शब्द व्यापक अर्थ में जनजातियों के द्वारा की जाने वाली लोक देवी और लोक देवताओं की आराधना है। इसे नृत्य-प्रधान पर्व के रूप में मनाया जाता है। बस्तर में एक निश्चित परिधि में निवास करने वाले अबूझमाड़ इलाके का यह एक गोत्र पर्व है जहाँ गोंड जनजाति के युवक-युवती, आबाल-वृद्ध सभी एक नियत गाँव में जुटते हैं और पूजा-अर्चना करते हैं। इसमें युवक-युवतियों की प्रमुख भूमिका होती है। गायता, सिरहा, गुनिया एवं गाँव के पुजारी इस पूजा को संपन्न कराते हैं। मांदर, ढोल, नगाड़ा, तुड़मुड़ी, मोहरी आदि लोक-वाद्ययंत्रों की संगत में नृत्य की प्रस्तुति प्रारंभ हो जाती है। ककसाड़-पर्व मनाने की कोई खास तिथि निश्चित नहीं रहती। अलग-अलग गाँवों का ककसाड़ अलग-अलग समय में मनाया जाता है। ककसाड़-पर्व के साथ ही आदिवासी कबीलों में शादी-विवाह की विधिवत शुरुआत होती है।*

*www.notnul.com* पर ककसाड़ पत्रिका उपलब्ध है।

# असम की कार्बी जनजाति

• वीरेन्द्र परमार •

कार्बी समुदाय के लोग असम के कार्बी आंगलोंग जिले में रहते हैं। इनकी कुछ आबादी असम के नार्थ कछार, कामरूप, नगाँव और शोणितपुर जिलों में भी निवास कराती है। मेघालय में भी कार्बी समुदाय के कुछ लोग रहते हैं। इन्हें मिकिर भी कहा जाता है, परन्तु वेलोग स्वयं को कभी मिकिर नहीं कहते हैं। पड़ोस में रहने वाले समुदाय के लोग इन्हें मिकिर कहते हैं। भारतीय संविधान में भी इन्हें मिकिर की संज्ञा दी गई है। मंगोल नाकनक्श के कार्बी समुदाय का देशांतरगमन कहाँ से हुआ इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। मिथकों और लोककथाओं के अनुसार वेलोग दक्षिण-पूर्व एशिया से आकर असम में बस गए। भाषिक दृष्टि से ये तिब्बती-बर्मी परिवार की भाषा बोलते हैं। इनकी भाषा और कुकी भाषा में बहुत समानता है। रीति-रिवाजों की -दृष्टि से नागा समुदाय से इनकी निकटता है। कुछ विद्वानों का मत है कि आरम्भ में कार्बी समुदाय के लोग नगाँव और शिबसागर (वर्तमान में जोरहाट) जिले के मध्य पर्वतीय क्षेत्र में बस गए। कालांतर में असम के अन्य क्षेत्रें में इनका प्रसार हुआ। कुछ विद्वानों ने विचार व्यक्त किया है कि आरंभिक चरण में कार्बी लोग दिमापुर (नागालैंड) और कपिली नदी के बीच स्थित हायोंग क्षेत्र में बसे थे। इस समुदाय के लोग बाँस के मचान (प्लेटफार्म) पर अपने घर बनाते हैं जो जमीन से लगभग पाँच फीट ऊपर होता है। छत फूस की होती है तथा दीवारें बांस की होती हैं। दीवारों पर मिट्टी के पलस्तर लगाए जाते हैं। घर में कई कमरे होते हैं। घर दो हिस्सों में विभक्त होते हैं। सामने के हिस्से को काम कहते हैं। यह अतिथियों के उपयोग के लिए होता है। घर के दूसरे हिस्से को कुत कहा जाता है। इसका उपयोग परिवार के सदस्य सोने के लिए करते हैं। इसमें चूल्हा भी होता है। घर के सामने बरामदा होता है जिसे होंगकुप कहते हैं तथा पीछे के बरामदे को पंगहोंगकुप कहते हैं। कुत के मध्य में दाम-बुक होता है। यहाँ बच्चे विश्राम करते हैं। जलावन की लकड़ियों का जिस जगह भंडारण किया जाता है उसे थेंग-पोंग-राई कहा जाता है। कार्बी समुदाय तीन वर्गों में विभक्त है-चिंगथोंग, रोंगहंग तथा अमरी। तीनो वर्गों के पाँच मुख्य कुर (गोत्र) हैं- इंगती II-तेरान III-तेरांग IV-इंघी V-तिमंग I इन पाँच गोत्रों के भी अनेक उपगोत्र हैं। पिता का कुर (गोत्र) ही बच्चों के कुर माने जाते हैं। कुर के अन्दर विवाह सर्वथा प्रतिबंधित है। एक कुर के सभी सदस्य परस्पर भाई-बहन समझे जाते हैं। इस समाज में एकविवाह प्रथा प्रचलित है, लेकिन बहुविवाह प्रतिबंधित नहीं है। विधवा विवाह सामाजिक रूप से मान्य है। अविवाहित छोटा भाई अपने बड़े भाई की विधवा से शादी कर सकता है, लेकिन किसी भी स्थिति में बड़ा भाई छोटे भाई की विधवा से शादी नहीं कर सकता। इस समाज में दोनों प्रकार की शादी प्रचलित है-माता-पिता द्वारा बातचीत के आधार पर विवाह एवं

वीरेन्द्र परमार

पता– 103, नवकार्तिक सोसायटी, प्लाट न.-13, सेक्टर-65, फरीदाबाद-121004

मो. 98682-00085

लड़का-लड़की की परस्पर सहमति से विवाह। माता-पिता द्वारा बातचीत के आधार पर होनेवाले विवाह में भी लड़की की सहमति आवश्यक है। अगर कोई लड़का किसी लड़की को पसंद करता है और उससे शादी करना चाहता है तो सर्वप्रथम वह अपने माता-पिता को लड़की के घर भेजता है। माता-पिता अंगूठी, मदिरा, पान पत्ता इत्यादि उपहार लेकर लड़की के घर जाते हैं। यदि उपहारों को स्वीकार कर लिया जाता है तो समझा जाता है कि कन्या पक्ष विवाह के लिए सहमत है। कार्बी समाज में तलाक विशेष परिस्थितियों में ही दिया जा सकता है। ग्रामसभा की अनुमति से ही तलाक लिया जा सकता है। पूर्वोत्तर की दूसरी जनजातियों की तरह कार्बी समुदाय में वधू-मूल्य की कोई परंपरा नहीं है। विवाह के उपरांत भी पत्नी अपने पिता का उपनाम धारण करती है, लेकिन बच्चे अपने पिता का उपनाम धारण करते हैं। कार्बी पितृसत्तात्मक

समाज है। पिता परिवार का प्रमुख होता है। परिवार में पति, पत्नी, उनके बच्चे और अविवाहित भाई-बहन रहते हैं। कुछ संयुक्त परिवार भी पाए जाते हैं। पिता की मृत्यु के बाद उसकी चल-अचल संपत्ति पर पुत्र का

अधिकार होता है। पैतृक संपत्ति पर पुत्रियों का कोई अधिकार नहीं होता है। अगर किसी व्यक्ति को पुत्र नहीं है तो उसकी मृत्यु के उपरांत उसकी संपत्ति उसके गोत्र के किसी निकटतम संबंधी की हो जाती है। कार्बी समाज कृषि पर निर्भर है। पर्वतीय क्षेत्रों में झूम खेती की जाती है। चावल इनकी मुख्य फसल है। कार्बी आंगलोंग के मैदानी क्षेत्रों में स्थायी खेती की जाती है। चावल के अतिरिक्त ये लोग मक्का, कपास आदि का भी उत्पादन करते हैं झयेलोग गाय, भैंस, बकरी आदि जानवर पालते हैं, लेकिन दूध नहीं पीते हैं। महिलायें बुनाई के काम में दक्ष होती हैं। बुनाई इस समाज का कुटीर उद्योग है। महिलाएं घरेलू उपयोग के लिए स्वयं कपड़े तैयार करती हैं। चावल इनका प्रमुख भोजन है। चावल के साथ कभी-कभी दाल भी खाते हैं। इसके अतिरिक्त वे सब्जियां, पत्ते, कंद-मूल, सूअर एवं मुर्गी का मांस, मछली आदि खाते हैं। दिन में दो बार ये लोग चावल खाते हैं । रेशम का कीड़ा इन लोगों का विशिष्ट आहार है। सूखी मछलियाँ, अंडे इनके भोजन में शामिल है। कार्बी लोग दूध नहीं पीते हैं, लेकिन कभी-कभी बिना दूध की चाय पीते हैं। चावल से बनी मदिरा (मोरपो) का नियमित सेवन किया जाता है। मदिरा के बिना किसी सामजिक, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक आयोजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पारंपरिक रूप से कार्बी समाज प्रकृतिपूजक अथवा जड़ात्मवादी है, लेकिन इनका हिंदूकरण हो चुका है। अब ये लोग हिंदू धर्म को मानते हैं झयेलोग विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। पुनर्जन्म, आत्मा के अमरत्व आदि में इनकी आस्था है 'अरनम संसार रेचो' अर्थात ईश्वर ने ही संसार की रचना की है, ऐसा इनका विश्वास है। इनका मानना है कि असंख्य देवी-देवताओं में से कुछ हितकारी एवं कुछ अनिष्टकारी होते हैं। इनलोगों का विश्वास है कि प्रत्येक बीमारी के लिए कोई न कोई दिव्य शक्ति उत्तरदायी होती है। अर्नम केथे इनके गृहदेवता हैं। तीन वर्ष में एक बार इस गृहदेवता की पूजा-अर्चना की जाती है और पशु-पक्षियों की बलि देकर उन्हें प्रसन्न किया जाता है। गृहदेवता को महान देवता माना जाता है घर के किसी सदस्य के बीमार होने पर सूअर की बलि दी जाती है तथा सम्पूर्ण गाँव को भोज दिया जाता है। मदिरा इस भोज का अनिवार्य अंग है। एक दूसरे गृहदेवता हैं जिनका नाम पेंग है। वर्ष में एक बार उनकी पूजा की जाती है। बकरे की बलि देकर गृहदेवता की पूजा की जाती है आरोग्य प्राप्ति के लिए जिस देवता की पूजा की जाती है उसका नाम हेम्फी अर्नम है झएक अन्य गृहदेवता हैं जिनका नाम रेक अंगलोंग है। कार्बी समाज सभी प्राकृतिक शक्तियों के प्रति श्रद्धावनत है तथा उनकी पूजा करता है। सूर्य, चंद्रमा, जलप्रपात, पर्वत, नदियाँ आदि इनके लिए आराध्य हैं। समय और स्थान के अनुसार इस समाज की पूजा विधियों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जहाँ पूर्वोत्तर की अनेक जनजातियों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है, कार्बी समाज अभी तक ईसाईयत के प्रभाव से अछूता है ये लोग अपने बच्चों का नामकरण मृत पूर्वजों व रिश्तेदारों के नामों पर करते हैं क्योंकि इनका मानना है कि मृत व्यक्ति इस संसार में पुनः जन्म लेता है। कार्बी जनजाति (मिकिर) के लोग अनेक त्योहार मनाते हैं जिनमें रंगकर और हचा प्रमुख हैं। रंगकर नववर्ष के उपलक्ष्य में मनाया जानेवाला त्योहार है। इसमें सुख-समृद्धि की कामना से देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इस त्यौहार में गाँव के सभी वरिष्ठ पुरुष सदस्य भाग लेते हैं। महिलाएं इसमें भाग नहीं लेती हैं। फसल तैयार होने पर कार्बी समुदाय के लोग हचा उत्सव मनाते हैं। इस उत्सव में सामूहिक भोज, नृत्य, गीत आदि का आयोजन किया जाता है। कार्बी समाज में युवागृह की परंपरा विद्यमान है। इसे फरला अथवा जिरकेदम कहते हैं। इसका निर्माण गाँव के किसी केंद्रीय स्थल पर किया जाता है। गाँव के सभी अविवाहित युवक इसके सदस्य होते हैं। सभी युवक इसमें रात्रि विश्राम करते हैं। इस युवागृह में दस पदाधिकारी होते हैं जो युवागृह द्वारा संचालित होनेवाली विभिन्न गतिविधियों की देखभाल व निगरानी करते हैं यहाँ पर सभी प्रकार के धार्मिक व सामाजिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। आधुनिकता और चिंतन पद्धति में बदलाव के कारण अन्य संस्थाओं की तरह फरला भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। कार्बी समुदाय में मृत्यु होने के बाद शव को जलाया जाता है। मृतक के सभी रिश्तेदार एवं ग्रामवासी शव को लेकर शवदाह स्थल पर जाते हैं जिसे थिरी कहा जाता है। मृतक की आत्मा की शांति के लिए मृत्यु के दूसरे दिन कुछ संस्कार संपन्न होते हैं, यह संस्कार चार दिनों तक चलता है। मृत्यु संबंधी मुख्य संस्कार परिवार की सुविधा के अनुसार बाद में भी किये जा सकते हैं क्योंकि यह एक खर्चीला आयोजन है। ❑

# आदिवासी मिथकीय लोक और जीवन-यथार्थ का जीवंत चित्र

## (संदर्भ 'छैला सन्दु' और 'डाईन' पुस्तकें)

• पुनीता जैन •

मंगल सिंह मुंडा एक ऐसे आदिवासी हस्ताक्षर हैं जिन्होंने काव्य (अनुवाद) और गद्य दोनों में ही समान रूप से हस्तक्षेप रखा है। उन्होंने कहानी, नाटक के अतिरिक्त दो उपन्यासों की भी रचना की है। उनका प्रथम उपन्यास 'छैला सन्दु'(2004) है जिसके केंद्र में लोक प्रचलित मिथकीय पात्र सन्दु का प्रेम-प्रसंग और उसका विशिष्ट व्यक्तित्व है अर्थात् यह एक चरित्र केंद्रित कथा है जिसका आधार जनश्रुति है। दूसरा उपन्यास 'डाईन' नवंबर 2016 से जून 2017 तक 'युद्ध रत आम आदमी' नामक पत्रिका में क्रमशः 6 खंडों में प्रकाशित हुआ है। वस्तुतः इसे उपन्यास नहीं एक लंबी कहानी के रूप में ही देखा जाना उचित मालूम होता है,जिसमें लेखक आदिवासी समाज के अंधविश्वास और स्त्री दमन को केंद्र में रखता है। यह दोनों रचनाएँ झारखंड के स्थानीय आदिवासी जीवन-जगत,अतीत को प्रस्तुत करने के साथ आदिवासी समुदाय व स्त्री के सामाजिक संघर्ष और शोषण पर भी दृष्टिपात करती हैं।

'छैला सन्दु' उपन्यास का आधार आदिवासी लोक का एक विलक्षण व्यक्तित्व सन्दु है जो गीत, संगीत, नृत्य में पारंगत है। नैसर्गिक रूप से निहित उदात्त मानव मूल्यों के कारण वह समाज में आदर का पात्र है। युवा समूह में बाँसुरी वादक का उसका रसिकराज रूप कान्हा की तरह लोकप्रिय व आकर्षण का केंद्र है। कला प्रवीणता और आकर्षक रूप रंग सन्दु की ख्याति का मूल कारण है। जबकि 'डाईन' उपन्यास के केंद्र में आदिवासी समाज की वह स्त्री है जो कार्यकुशल, नेक और बुद्धिमान है किंतु समाज में व्याप्त अज्ञानता, कूपमंडूकता, अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र-टोटके के कारण वह उत्पीड़न और दमन का शिकार है।

उपन्यास रचना के क्षेत्र में मंगल सिंह मुंडा इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने झारखंड की पृष्ठभूमि में, लोक प्रचलित जनश्रुति को आधार बनाकर आदिवासी संस्कृति, प्रकृति और समुदाय की अन्योन्याश्रितता तथा समाज में व्याप्त असमानता, अज्ञानता, गरीबी, तंत्र-मंत्र, अंधविश्वास, दमन व अन्याय को प्रकाश में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा किया है। इन रचनाओं में कई कमियाँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। यहाँ कालक्रम, स्थान और घटनाक्रमों में आंतरिक सामंजस्य की कमी कथा में व्यतिक्रम उपस्थित करती है। इन रचनाओं

पुनीता जैन

पता– प्राध्यापक-हिंदी, शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भेल-462022 भोपाल

मो. 94250-10223

की कथा संरचना में ऐसी ही कई विसंगतियाँ दिखाई देती हैं। लेखक के अनावश्यक हस्तक्षेप से उत्पन्न लंबे विवरण कथा प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं तथा उनकी कथा- दृष्टि को अस्पष्ट बनाती है। वे अपनी दृष्टि मूलतः कहाँ केंद्रित करना चाहते हैं, इस असमंजस के कारण वे बार बार भटकते हैं। बहुत कुछ समेटने की यह शैली भटकाव का कारण बनती है। भाषा की कृत्रिमता, हिंदी की तत्समनिष्ठ शब्दावली के मोह, प्राचीन ग्रंथों के अनावश्यक असंबद्ध संदर्भ, हिंदू धर्म के संदर्भ और प्रसंग तथा चमत्कारिक घटनाएँ इस रचना की मूल कथा को विच्छिन्न करती है। यहाँ झारखंड का आदिवासी लोक व संस्कृति का मूल व नैसर्गिक रूप पीछे छूट जाता है। जबकि लेखक

इनका प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत करने में सक्षम है। लेखकीय व्यक्तित्व के अतिरिक्त हस्तक्षेप से उत्पन्न बिखराव, अनावश्यक विस्तार और तारतम्यता का अभाव कथा प्रवाह को हानि पहुँचाता है।

इन कमियों व अपरिपक्वता के बावजूद यह रचनाएँ झारखंड के आदिवासी जीवन-जगत, संस्कृति, प्रकृति की हिंदी उपन्यास लेखन में प्रविष्टि के नजरिए से उल्लेखनीय हैं। मंगल सिंह मुंडा की दृष्टि सामाजिक परिवेश के साथ-साथ वर्चस्वशाली शक्तियों के शोषण, दमन उनकी दुरभिसंधियों पर विशेष रूप से गई है। 'छैला सन्दु' उपन्यास का सूबेदार हकीम सिंह हो या 'डाईन' उपन्यास का सामंत रामधन बाबू दोनों दमनकारी सत्ता शक्तियाँ स्वार्थसिद्धि हेतु भोले-भाले आदिवासी जन के साथ अन्याय करती रही हैं। सामंती शक्तियों ने भोले भाले वनवासियों के श्रम का शोषण करने के साथ-साथ स्त्री समाज को भी हमेशा अपने निशाने पर रखा है। दोनों उपन्यास इन शक्ति केंद्रों की गतिविधियों और उसके दुष्प्रभाव को उपन्यास में बारीकी से दिखाते हैं।

'छैला सन्दु' उपन्यास तीन खंडों में विभाजित है बाल लीला, प्रेम लीला, मृत्यु लीला। प्रथम खंड में बिहार के पहाड़ी भूभाग तमाड़ के राजा वीर विक्रम सिंह देव के रियासत के गाँव अँड़की निवासी सूबेदार हकीम सिंह की पुत्री बुंदी और सुरजय व बेला के पुत्र सन्दु के बाल्यकाल के साहचार्य व प्रेम की कथा है। बाद की कथा में उनके प्रेम को लेकर गाँव में उत्पन्न तनाव, संघर्ष, बुंदी के अन्यत्र विवाह, दोनों के पुनः मेल मिलाप, तत्पश्चात् हकीम सिंह के भय से सुरजय और बेला का अपने पुत्रों पुरता और सन्दु सहित गाँव से पलायन तथा बुंदी की मृत्यु आदि घटनाक्रम अभिव्यक्त हैं। सामाजिक स्थिति व स्तरीकरण हमेशा से व्यक्ति के प्रेम और स्वतंत्रता में बाधक बनता रहा है, जबकि बाल मन निर्विकार और सहज होता है। सन्दु का मोहक रूप, कलामर्मज्ञता सबको आकृष्ट करती है। उसे गुरुवर कुंवर सिंह ने छिपकर संगीत की शिक्षा दी है, जो बूंदी के भी गुरु है। स्त्री बड़े परिवार की हो या गरीब परिवार की वह स्वतंत्र नहीं है। 'छैला सन्दु' उपन्यास में बड़े परिवार की बुंदी विवश है। उस पर पिता के प्रतिबंध हैं। इसी तरह 'डाईन' उपन्यास की वैया गरीब है, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान से पूर्ण है, किंतु रामधन बाबू उसे डायन घोषित करने हेतु तिकड़ में विठाता है। यद्यपि बुंदी की माता उसके प्रति संवेदनशील है। इसी तरह 'डाईन' उपन्यास में रामधन की पत्नी गोमती बाई वैया के प्रति उदार है। मंगल सिंह मुंडा यहाँ स्त्रियों के परस्पर वहनापे को तो रेखांकित करते हैं किंतु पित सत्ता के सम्मुख उन्हें विवश और शोषित दिखाते हैं। संघर्षशील आदिवासी समाज प्रेम को स्वाभाविक मानता है। अतः वह सन्दु के पक्ष में पुरता के नेतृत्व में हकीम सिंह की सेना से संघर्ष हेतु तैयार हो जाता है। हालांकि यहाँ आदिवासी समाज के जीवन जगत, जीवन-दर्शन को जगह नहीं मिली है।

प्रथम खंड में संघर्ष के दृश्यों के साथ कुछ उपकथाओं (हुज्जा चंडी की कथा) आदि का संयोजन है। यह कथाएँ कई जगह मूल कथा की निरंतरता को बाधित करती हैं। भूत-प्रेत, पिशाच के संदर्भ, पारलौकिक शक्तियों के अस्वाभाविक चमत्कारिक दृश्य कथा में मिलते हैं। लेखक ने तिलिस्मी दृश्य रचना को विस्तार से आदिवासियों व हकीम सिंह की सेना के संघर्ष के संदर्भ में प्रस्तुत किया है, लगता है प्रकृति और संस्कृति की जगह इन अलौकिक शक्तियों का आदिवासी समाज पर अधिक प्रभाव है। यहाँ दोनों पक्षों के समझौते से संघर्ष की समाप्ति इस शर्त पर होती है कि बुंदी का स्वयंवर हो और उसमें जो जेष्ठ बाँसुरी वादक हो, बुंदी का विवाह उसी से होगा। आगे इस आयोजन में सन्दु विजयी घोषित होता है, किंतु गुरु कुंवर सिंह के समझाने पर वह बलिदान और त्याग का रास्ता चुनता है और बूंदी के हाथों विजय माला को अस्वीकार कर देता है। यहाँ वर्चस्वशाली शक्ति के पक्ष में कूट नीति की सफलता सन्दु और बुंदी के विलगाव का कारण बनती है। बुंदी का विवाह बुंडू रियासत के युवराज वीरभद्र से होना, फिर सयोगवश बुंदी और सन्दु की पुनः भेंट से यह प्रेम कथा गति पकड़ती है, किंतु एक रात हकीम सिंह के भय से सन्दु का परिवार जब पलायन कर जाता है तब निराश बुंदी

इस लोक से विदा हो जाती है। यहाँ बाल लीला खंड समाप्त होता है। इस खंड में लेखक ने विस्तार से कल्पना लोक खड़ा किया है। जहाँ तंत्र-मंत्र, भूत, पिशाच, टोना, तिलिस्म आदि में गुंफित सन्दु और बुंदी की ड्रेम कथा अभिव्यक्ति पाती है। राजसी और सामंती सत्ता के भय से यहाँ न प्रेम सफल हो पाता है, न ही एक आदिवासी परिवार अपना सामान्य जीवन जी पाता है। वास्तव में इस कथा के समानांतर मंगल सिंह मुंडा दमन, उत्पीड़न और सत्ता की शक्तियों को भी रेखांकित करते चलते हैं।

दूसरे खंड का नाम 'प्रेम लीला' है। सुरजय, बेला, पुरता और सन्दु अँड़की गाँव से भाग कर रात भर जंगल पार करते हुए एक छोटे से गांव मरंगहदा में शरण पाते हैं। यहाँ भी सन्दु के आकर्षक व्यक्तित्व, मोहक बाँसुरी वादन से युवतियाँ हीरा, मुँगली, चंपा आदि उस पर मोहित हो जाती है। उधर अँड़की गाँव में बुंदी की मृत्यु से आहत हकीम सिंह की भी मृत्यु हो जाती है। यहाँ लेखक का कल्पना लोक बुंदी की आत्मा को आकाश में उड़ते विचरते हुए दिखाता है। वह सन्दु से भी वार्तालाप करती है तथा हीरा के उसके प्रति स्नेह को स्वीकार करती है। बुंदी यहाँ 'पापी जगत से कूच कर आई नारी उद्धारक' के रूप में अपना परिचय देती है। लेखक यथार्थ धरातल पर न्याय न पाकर परलोक में उसकी कल्पना करता है। बुंदी का एक कथन है--"मैं पापी जगत से कूच कर आई नारी उद्धारक हूँ। नारीत्व की रक्षिका हूँ। मैंने जगत के पापी पुरुषों के चंगुल से नारी को छुड़ाने, उसके जन्मसिद्ध अधिकार को दिलाने के निमित्त स्वर्ग में शरण ली है। न्याय मेरा नाम, स्वर्ग मेरा धाम है।" (पृठ169) स्पष्ट है कि यह स्वर्ग पृथ्वी पर नहीं है, यह कल्पना लोक में है। जहाँ नारी को कथित न्याय मिल सकता है। बुंदी का उक्त कथन एक युवती बा संगेन के लिए है, जो 'अधिकार पाने के जुल्म में सजा काट रही' है। यहाँ भी एक अंतर्कथा मूल कथा के साथ संयोजित है। इस मरंगहदा गाँव में सन्दु के प्रति हीरा के आकर्षण के बारे में गाँव के युवक द्वारा हीरा के पिता के कान भरने व संघर्ष के पश्चात् सन्दु को पुनः परिवार सहित यह गाँव छोड़ना पड़ता है। यहाँ से वे उत्तर दिशा में बंगुर पीड़ी गाँव पहुँचते हैं। इस दूसरे खंड का नाम प्रेम लीला अवश्य है, किंतु तार्किक दृष्टिकोण से देखा जाए तो प्रथम खंड में प्रेम की अभिव्यक्ति है द्वितीय खंड में सन्दु के परिवार का पलायन है। पहले खंड के पश्चात् इस खंड में उपन्यास में कई जगह कथा प्रवाह अवरूद्ध होता है। पहले खंड का केंद्र अँड़की गाँव है जबकि दूसरे खंड का केंद्र मरंगहदा गांव है। इसके पश्चात् तीसरा खंड मृत्यु लीला है जिसका केंद्र बंगुर पीड़ी गाँव है।

दूसरे खंड में सन्दु का व्यक्तित्व पूरी तरह से आकार लेता है और इस व्यक्तित्व का चरम हमें तीसरे खंड में दिखाई देता है। इस खंड में सन्दु की चमत्कारिक शक्तियों के साथ उसे कान्हा के रसिकराज रूप में भी दिखाया गया है। साथ ही वह एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में भी प्रस्तुत होता है। इस गाँव में रहते हुए पुरता का विवाह आगामारी से होता है। हालांकि बहुत जल्दी आगामारी विधवा हो जाती है और सन्दु के प्रति आकर्षित होती है किंतु सन्दु का साथ न पाकर वह प्रतिशोध में जल उठती है और मुँगा के साथ एक योजना बनाती है। आगामारी को लेखक एक स्वतंत्रचेता और मानवीय दुर्बलताओं से युक्त महिला के रूप में दिखाता है। सन्दु का विवाह कैब्य से होता है। वह अपनी पत्नी कैब्य और एक पुत्र के साथ जीवन व्यतीत करता है किंतु उसकी आसक्ति नवरी नमक स्त्री के प्रति है। लेखक ने उपन्यास में संस्कृत भाषा का उपयोग करते हुए आदिवासी परिवेश में मिथक चमत्कार, लौकिक अलौकिक से लेकर वेद, उपनिषद, गीता तक से उपदेश, नीति कथन यहाँ प्रस्तुत किए हैं। नैतिक कथनों के लिए वह एक ओर हिंदू धर्म ग्रंथों की ओर जाते हैं तो दूसरी तरफ सिंगबोंगा के साथ बुरुबोंगा (शिव) इकिरबोंगा (इंद्र) आदि का भी उल्लेख करते हैं।

मंगल सिंह मुंडा के इस दीर्घ उपन्यास में आदिवासी जीवन-यथार्थ की तुलना में मिथक, कल्पना लोक द्वारा तिलिस्म, चमत्कार, टोटका, तंत्र-मंत्र को विस्तार से जगह दी गई है। कथा में कई भटकाव, अनावश्यक विस्तार है, जो कि उसकी एकसूत्रता और एकसारता को अवरुद्ध करते हैं। लेखन में यथास्थान स्त्री मुक्ति विषयक अपने विचारों को पिरोने का भी प्रयास

लेखक ने किया है। वर्चस्वशाली शक्तियों द्वारा आदिवासी परिवारों के उत्पीड़न के साथ आदिवासी समाज के भीतर निहित मानवीय दुर्बलताओं ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध को इस उपन्यास में जगह मिली है।

मंगल सिंह मुंडा का दूसरा उपन्यास 'डाईन' आदिवासी समाज के भीतर की स्थितियों के साथ सामंती षड्यंत्र को भी रेखांकित करता है। आदिवासी समाज के भीतर पैठी कई बुराइयों के पीछे अशिक्षा, अज्ञानता एक बड़ा कारण है। भूत प्रेत, पिशाच, चुड़ैल, डायन जैसी उपस्थितियों पर विश्वास के पीछे यही कारण है। यह कथा विधुर बीरू की है, जो माँ जरगी और बेटी सुगिया के साथ जीवन यापन करता है और रामधन बाबू के यहाँ बंधुआ मजदूर है। वह औषधि, जड़ी बूटियों के फार्मूले बनाना जानता है तथा विष बुझे तीर बनाने में वह सिद्धहस्त है। पूरे गाँव में उसकी कला की मांग है। वह दूसरे गाँव की वैया से विवाह कर सुगिया को भी सुरक्षा देना चाहता है, किंतु उसके गाँव में भी वैया के डायन होने की खबर सुनता है। इससे स्वयं वह भी सशंकित है। आदिवासी समाज आज भी ऐसी धारणाओं से जुड़ा है। वस्तुतः वैया परिश्रमी है, बुद्धिमान और अनुशासित है तथा परिश्रमपूर्वक धन कमाकर एक अच्छा जीवन यापन करने में विश्वास करती है। किंतु गाँव वाले उसकी इस उपलब्धि को कोई अलौकिक शक्ति मानते हैं। फलतः उसका यह व्यक्तित्व लोगों में शंका जगाता है। समाज की रुग्ण धारणाएँ अज्ञानता हो या सामाजिक तनाव या फिर जंग का मैदान यह स्त्री के लिए ही सर्वाधिक घातक होता है। सुनी सुनाई बातों के बावजूद बीरू वैया को एक रात घर ले आता है किंतु स्वयं उसकी माँ भी उसके प्रति असहिष्णु है। पूरा गाँव भी उसके प्रति अनुदार है। इस स्थिति का लाभ उठाकर रामधन बाबू योजना अनुसार बीरू के पड़ोस में दुर्गा नमक बालक की मृत्यु का दोष टोटके बाई के माध्यम से वैया पर लगवा देता है। उसकी यह योजना है कि समाज से कटने के बाद बीरू को कर्ज देकर वह उसकी जमीन, बैल, हल आदि हड़प लेगा। उसकी यह योजना सफल भी हो जाती है। वैया को मेले में जलेबी में विष दे दिया जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

यहाँ लेखक ने गाँव में डायन प्रथा के पीछे सामंती शक्तियों के षड्यंत्र, शोषणकारी नीतियों के साथ-साथ गाँव वालों की अशिक्षा, अज्ञानता को भी चिंहित किया है। आदिवासी समाज की अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास आदि कई कमजोरियाँ इस प्रथा को बनाए हुए हैं। एक ओर यह समाज स्त्री के प्रति समानता का विचार रखता है तो दूसरी तरफ इसी समाज में इस सदी में भी स्त्री को डायन घोषित कर उसकी हत्या कर दी जाती है। यही नहीं जिस स्त्री को डायन घोषित किया जाता है उसकी सास भी इस विचार में शामिल है। वैया द्वारा पढ़ा लिखा कर बैरिस्टर बनाई गई बेटी सुगिया या पति भी समाज के इस कृत्य का विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाते। परिवार की अकर्मण्यता और संवेदनहीनता के साथ गाँव के प्रधान की शोषणकारी योजनाओं आदि द्वारा आदिवासी समाज की जड़ता को उपन्यास के केंद्र में लाकर लेखक ने कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं।

यह दोनों रचनाएँ अपनी तमाम अभिव्यक्तिगत कमियों और भाषिक सीमाओं के बावजूद झारखंड के स्थानीय वैशिष्ट्य, परिवेश, मान्यताओं, जनश्रुतियों, स्थितियों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। मंगल सिंह मुंडा 'छैला सन्दु' उपन्यास में जहाँ अपनी भौगोलिक सीमा में प्रकृति के संग जीवन व्यतीत करते आदिवासी जन, उनके आख्यान, सामाजिक रूढ़ियों के साथ शोषणकारी सत्ता संरचनाओं की प्रवृत्ति को पहचानते हुए अपने कल्पना लोक में स्वतंत्र उड़ान भरते हैं, वहीं 'डाईन' उपन्यास में आदिवासी समुदाय की कुप्रथा के पीछे कार्यरत सामंती दुरभिसंधियों तक पहुँच बनाते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि दोनों उपन्यास में वे स्त्री स्वत्रंता और उत्पीड़न पर भी विशेष रूप से निगाह डालते हैं। बुंदी हो या वैया, दोनों सामाजिक रूढ़ मान्यताओं की शिकार दिखाई गयी हैं। बहरहाल, अभिव्यक्ति कौशल की सीमाओं के बावजूद आदिवासी लेखन के इतिहास में यह कृतियाँ एक महत्त्वपूर्ण उपस्थिति कहलाने की हकदार हैं। ❑

# जौनसारी जनजाति

• कुसुमलता सिंह •

उत्तराखंड हिमालय पर्वत के एक बड़े भाग में स्थित है। इस क्षेत्र की सीमाएं चीन, तिब्बत एवं नेपाल की अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को तथा देश में हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश की छूती हैं। उत्तराखंड का उल्लेख प्राचीन हिंदू धर्म ग्रंथों में केदारखंड, मानसखंड और हिमवंत के रूप में हुआ है। इसके तीर्थस्थलों के कारण इसे देवभूमि कहा जाता है। पर्यटन के अनुसार उत्तराखंड के मूल निवासी का विभिन्न जनजातियों से संबंध है। इनकी प्रमुख जनजातियों में भोटिया या शौका, आदिवासी रांगा, थारू, बुक्सा, जौनसारी; राजिस या बनरावत के अलावा माहीगीर और वनगुजर्स भी शामिल हैं।

जौनसारी जनजाति जो एक छोटा सा समुदाय है मुख्यतः देहरादून जिले के चकराता, कालसी के त्यूणी तहसील में निवास करता है। चकराता, कालसी, त्यूणी का क्षेत्र जौनसार बावर के नाम से जाना जाता है जो जौनसारी भाषा बोलते हैं। जौनसार का केंद्र चकराता देहरादून से 90 किमी की दूरी पर है, जौनसार के पूर्व में यमुना नदी एवं पश्चिम में टोंस नदी है, टोंस नदी ही उत्तराखंड को हिमांचल से अलग करती है, जौनसार बावर का मुख्य बाजार चकराता है, चकराता एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है।

जौनसारी समुदाय अपनी अनोखी संस्कृति, वेशभूषा रहन-सहन के लिए प्रसिद्ध है। पुरुष पायजामा/चूड़ीदार पहनते हैं जिसे जंघेल (झंगेल) कहते हैं। उसके ऊपर ऊनी कोट जिसे चोरा (चोड़ा) कहते हैं और सिर पर टोपी पहनते हैं। महिलाएँ 'घाघरा' जिसे लुरिया कहती हैं, वह पहनती हैं। उपर कुर्ती जिसे झग्गा कहते हैं वह पहनती हैं। अपने सिर पर स्कार्फ (धांतु) बाँधती हैं। आभूषणों में तुगल, बुलाक, नाथ, उत्तरायण पहनती हैं। भारत सरकार द्वारा 1967 में जौनसार बावर को जनजातीय क्षेत्र घोषित किया गया था। यह भारत का संभवतः पहला ऐसा जनजाति समुदाय है, जिसे जाति के आधार पर आरक्षण नहीं मिला है, बल्कि आर्थिक व पिछड़ेपन के कारण इसे जनजाति का दर्जा दिया गया था।

जौनसार बावर में निवास करने वाली जातियों में सामान्यतः राजपूत (जिन्हे स्थानीय भाषा में खोश कहा जाता है) ब्राह्मण, खोश या भाट है। इन्हे पांडवो का वंशज माना जाता है, और अन्य जातियों में बाजगी, बढ़ई एवं दलित लोग निवास करते हैं। राजपूतों में चौहान, राणा, तोमर, राठौर, पंवार आदि एवं पंडितों में जोशी, दत्त, नौटियाल आदि लोग निवास करते हैं।

**जौनसार की संस्कृति-** जौनसार अपनी एक अनूठी संस्कृति, वेषभूषा, खानपान, रहन-सहन, के कारण दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। जौनसारी समुदाय 'महासू देवता' का सम्मान करता है जो जौनसारी के प्रमुख देवता हैं। स्थानीय लोग हारुल, घुंडिया रासो, झेंता रासो, जंगबाजी, थौडे जैसे लोक नृत्य करते हैं। मोरोज और बिस्सू मेले आयोजित किए जाते हैं। जो फसलों की कटाई की अवधि को चिह्नित करते हैं।

इनके त्यौहार में मुख्यतः नुणाई, बिस्सु, माघ मेला, दीपावली, दशहरा आदि कई त्यौहार हैं, जो बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। प्रत्येक त्यौहार में लोग सामूहिक नृत्य करते हैं, और डोल और दमाँऊ की धुन बजायी जाती है।

**पर्यटन-** जौनसार बावर अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए जाना जाता है, यहाँ का वातावरण साफ एवं स्वच्छ है, चकराता, चिलिमिरी, चुरानी,सवाई, टांनडांडा, रामताल गार्डन, बैरटखाई, लाखामंडल, टाइगर फॉल, बुंदेर गुफा, कोटी कनासर, हनोल व देववन आदि यहाँ के पर्यटन स्थल है।

**पकवान-** जौनसार बावर में कई पकवान बनाये जाते हैं, जिसमें से प्रमुख हैं हुलुए, पिनुए, कोपराड़ी या असके, चिलडे आदि ऐसे पकवान जो आपको मुख्य रूप से केवल जौनसार बावर में ही खाने को मिलेंगे। ❑

# उत्तर आधुनिक विमर्शः हिंदी कविता में स्त्री लेखन की अन्तर्दृष्टियाँ

• प्रियंका भारद्वाज •

इक्कीसवीं सदी का युग वैश्विक हमलों, खतरों एवम् संकट का युग है। एक बेहद जटिल समय में हम जी रहे हैं। इस समय में साहित्य को अनेक दिक्कतों और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। इन वर्षों में बहुत कुछ बदल गया और बदलाव की प्रक्रिया जारी है। आज का समय बाजार का समय है। यह समय प्रेम, हर्ष, उल्लास, आनंद, संतोष, उम्मीद, आस्था, विश्वास का नहीं बल्कि खौफ़, भय, आतंक का समय है। एक मरणोन्मुखी समाज में रहते हुए हम ऊपरी स्तर पर चीजों के सही होने की दुहाई दे रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व विश्वग्राम (Global Village) के स्वप्न में अपनी मूलगामी परंपराओं से दूर होता जा रहा है। ऐसे आतंकित समय में समकालीन-साहित्य, समकालीन कवि और कविता के वर्तमान परिदृश्य वैश्विक हमलों और संकटों एवम् चिंतन के बौद्धिक आयामों से जूझ रहे हैं।

इस विराट परिवर्तन-चक्र में समकालीन-साहित्य आधुनिक और उत्तर-आधुनिक के बीज से उपजे मुक्ति-संघर्षों, मुक्ति आंदोलनों की मुहिम से घिरा है। जिसके अंतर्गत समकालीन हिंदी-कविता के संदर्भ में जन्म लेती स्त्रीवादी संघर्ष और चेतनाएँ शामिल है। 'यह उत्तर आधुनिक बोध मुक्ति आंदालनों के भीतर से उपजा रेडिकल (मौलिक) आंदोलन है जिसने पुरानी विचारधाराओं, संस्थाओं, व्यवस्थाओं पर न केवल प्रश्न चिह्न लगाए हैं बल्कि उन्हें अप्रासंगिक करार दे दिया है।'[1] और इन्हीं के बीच से 21वीं सदी के साहित्य और कविता में स्त्रीवादी चेतना मुखर हुई है।

समकालीन साहित्य में हिंदी-कविता के अंतर्गत अपनी रचनात्मक, भावनात्मक काव्यदृष्टि लेकर उभरी महिला लेखिकाएँ या कवयित्रियाँ हमारे वीच नवीन जीवन दर्शन, नवीन चिंतन, नवीन भाव बोध, नवीन संवेदना और ऊर्जा को लेकर उपस्थित हुई है। जिसके केन्द्र में वे सभी स्वर विद्यमान है जो साहित्य की गद्य विधा में अधिक ज़ोर से चलाए जा रहे हैं। हिंदी-कविता में या यूँ कहें समकालीन-कविता में समकालीन कविता के मुख्य हस्ताक्षर कवियों, मुक्तिबोध, शमशेरबहादुर सिंह, त्रिलोचन, धूमिल, लीलाधर जूगड़ी, केदारनाथ सिंह, कुमार विकल, अरूण कमल, उदय प्रकाश, कुमार कृष्ण, मदन कश्यप, लीलाधर मंडलोई आदि मुख्य समकालीन कवियों के साथ जिन नई कवयित्रियों ने 'कवियों से अधिक दुस्साहसी, प्रयोगधर्मा और कल्पनाशील के साथ हिंदी कविता में नई कोमलता, शांत संघर्ष, संयमित ऐंद्रीयता आदि

**प्रियंका भारद्वाज**

**पता**– सहायक प्रवक्ता हिंदी-विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सोलन-173211 (हि.प्र.)

**मो.** 82190-36221

को स्वानुभूत होकर लिखा उनमें एक ओर 75 से ज्यादा हिंदी-पुस्तकें लिखने वाली सुनीता जैन का नाम है जो लगभग चार दशकों तक लगातार लिखती रहीं। 'दूसरी ओर तेजी ग्रोवर और गगन गिल हैं जिनके रचना संसार में गहरी निजता है, कात्यायनी जिनके यहाँ राजनैतिक प्रतिबद्धता थी और अनामिका जो निजी और सामाजिकता को जोड़ने में प्रयत्नशील हैं।'[2] दूसरी ओर आदिवासी संघर्षों को आवाज़ देती रमणिका गुप्ता जी थीं। और इन सबके बीच से अपना रास्ता खुद बनाती, नगाड़ों पर शब्दों को बजाती निर्मला पुतुल हैं। 'घर-निकासी' जैसे कविता-संग्रह के साथ 'पानी का स्वाद' बाँटती नीलेश रघुवंशी के साथ-साथ इक्कीसवीं सदी की स्त्री-कविता के नये

रंग, नई छवियों के साथ स्त्री-संघर्षों के विभिन्न अर्धच्छायाओं के शेड्स रचती *'मैं अपनी औरत हूँ/जब जी चाहता है तब खाती हूँ/मैं किसी की मार नहीं सहती/और मेरा परमेश्वर कोई नहीं'*[4] जैसी स्त्रीवादी पंक्तियाँ लिखने वाली सविता सिंह जैसी कवयित्रियों के नाम समकालीन कविता के आधुनिक-विमर्श की रचनाशीलता में दर्ज हैं। ये स्त्री-कवयित्रियाँ अपने संपूर्ण इन्वॉल्वमेंट के साथ कविताएँ लिख रही हैं। और अपने मूल स्वर में अधिक डिफेंसिव और अधिक जागरूक हैं। अधिक डिफेंसिव दिखने के बाद भी इन स्त्री-लेखिकाओं को कविताओं का original मूल ग्राफ फेमिनिस्ट (नारीवादी) से ज्यादा फेमिनिन है– (नारी संबंधी/नारी सुलभ (स्त्री पक्ष)

*'पुरुष और स्त्री में/झगड़ा बस इतना भर-सा/पुरुष चाहता मान जाये स्त्री/स्त्री चाहती मान जायें नहीं स्त्री का"*

(सुनीता जैन)

इसी तरह

*'औरतें जब चढ़ती हैं/एक-एक सीढ़ी/सिर पर छह ईंटे रख/ गर्भ में पलते शिशु को सम्भालतीं/ संभल-संभल/वे नारा लगा रही होती हैं/शोषण के प्रतिपक्ष में निःस्वर/औरतें लड़ती हैं अपनी निःस्वर औरतें लड़ती है अपनी लड़ाई/ प्रतिदिन अपने-अपने स्तर पर/वे नहीं बाँचती स्त्री-शक्ति का एक भी आखर।'*[5]

(सुनीता जैन)

उत्तर-आधुनिक हिंदी-कविता वास्तव में हाशिए से केंद्र की ओर वापसी की कविता है। जिसके अंतर्गत दलित, निम्न, आदिवासी, अगले-पिछड़े तमाम वर्गों के संघर्षों का अंतर्जाल निहित है। इस संघर्ष की साहित्यिक ठेकेदारी काफी समय तक पुरुष-लेखकों द्वारा ली गई जिसे 90 के दशक के बाद संपूर्ण रूप से महिला-लेखिकाओं ने उठाने का दायित्व संभाला है।[5] आप यदि साहित्य की प्रारंभिक पृष्ठभूमि को देखें तो ऐसा नहीं था कि उस समय स्त्रियाँ लेखन नहीं कर रही थी। राधावल्लभ त्रिपाठी बताते हैं कि संस्कृत-साहित्य में कई कवयित्रियाँ थी लेकिन मीरा को छोड़कर शेष के बारे में हमारा समाज कम जानता है? क्योंकि वे हमारे पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं रही। और तो और मिश्र बंधुओं ने जिन कवयित्रियों का अपने इतिहास में जिक्र किया उनका रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में जिक्र तक नहीं किया। इसी तरह नव-जागरण काल में हिंदी-साहित्य के समक्ष केवल जाति, राष्ट्र और भाषा के प्रश्न ही सामने थे।'[6] साहित्य में स्त्री केवल काव्यात्मक-सौंदर्य के रूप में उपस्थित रही। स्वच्छंदतावाद बनाम छायावाद में जयशंकर प्रसाद ने जिस नारी को श्रद्धा, आस्था, विश्वास का जामा पहनाकर प्रस्तुत किया, 'कामायनी' जैसा महाकाव्य लिखकर छायावाद के हस्ताक्षर कवियों में उन्हें स्थान मिला। उन्हीं के साथ-साथ नारी की वेदना, पीड़ा को अभिव्यक्त करने वाली छायावाद की चौथी स्तंभ महादेवी वर्मा की विचारशीलता को वह स्थान नहीं दिया गया जो उत्तर आधुनिक काल के इस दौर में परिदृश्य-परिवर्तित हो जाने के बाद दिया जा रहा है। उनके साहित्य को स्त्री-विमर्श की वैश्विक परिकल्पनाओं के साथ देखा जाने लगा और 'कुछ लेखों में यह भी लिखा गया कि महादेवी वर्मा तो सिमोन-द-बोउवार (बुआ) से पहले स्त्री-विमर्श पर लिख रही थी।' 'महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' इसी दिशा में स्त्री विमर्श है, जहाँ उनकी आलोचनात्मक शक्ति को साफ पहचाना जा सकता है।'[7] समकालीन कविता में स्त्री के स्वत्व, उनकी स्वाययत्ता, चिंता, उनकी आंकाक्षाओं जिजीविषाओं, उनके हर्ष, विमर्ष, विषाद, उन्माद को स्त्री लेखिकाएँ स्त्री होकर, स्त्री की दुनिया को एक बेहद यथार्थवादी और चवचनसंत।चचमंस के साथ साहित्य में खोलती हैं। समकालीन कविता में स्त्री-कवयित्रियों के स्त्री सुलभ स्वर संवेदनाओं की गहराई में पूर्ण स्वानाभूत होकर निकलते हैं। जिसमें अनुभूति का उर्ववक (मूड) पहले बेहद साधारण स्तर पर दिखाई देता है और धीरे-धीरे कविता का सौंदर्य बोध हाशिए पर पड़ी स्त्रियों के दार्शनिक बिंब की सक्रियता रचने लगता है। स्त्री-लेखिकाएँ स्त्री-अस्मिता के संघर्षों का आख्यान रचने लगती हैं।

निर्मला पुतुल उन्हीं समकालीन-कवयित्रियों में से हैं जिन्होंने 'अपने यहाँ दो अस्मिताओं-आदिवासी और स्त्री संघर्ष को जबरदस्त रूप में उठाया है। यहाँ आदिवासी समाज का बर्बरतापूर्ण इतिहास है, संघर्ष हैं, अंधकार है...।'[8] स्त्री संघर्षों को रचने वाली निर्मला पुतुल की कविताओं में जिन बेघर स्त्रियों के स्वप्नों दृश्य उभरे हैं उनमें स्त्रीत्व तो है ही साथ ही साथ पुरुषत्व भी मौजूद है। इस तरह यहाँ की कविताएँ अपने विस्तृत फलक में हाशिए की बेड़ियों को कविता के कवितापन से तोड़ पाई हैं–

*'एक स्त्री गा रही है/दूसरी*

*रो रही है/और इन दोनों के बीच खड़ी एक तीसरी स्त्री/इन दोनों को बार-बार देखती कुछ सोच रही है/ओ, स्त्री विमर्श में शामिल लेखकों!/क्या तुम बता सकते हो/यह तीसरी स्त्री क्या सोच रही है?/एक स्त्री पीठ पर बच्चा बाँधे धान रोप रही है/दूसरी सरकार गिराने और बनाने में लगी है/ओ, आदिवासी अस्मिता पर बात करने वाली/झड़ावदार औरतों!/इन दो पंक्तियों के बीच तुम गुम हो गई उन औरतों का बता जिसका नाम तुम्हारी बहस में शामिल नहीं है।"*

(निर्मल पुतुल)

भारतीय स्त्रियों की पीड़ा, उसके राग को अपनी विंबात्मक भाषा के रूप में दर्ज करना उत्तर-आधुनिक स्त्री कवयित्रियों को भली भाँति आता है है। उनकी कविताओं में स्त्री -मुक्ति या स्त्री- संघर्ष का अर्थ रागात्मक, पारिवारिक मुक्ति से नहीं है। अपने पूर्ण कलेवर में स्त्री कवयित्रियाँ स्त्री- राग, स्त्री- आग, स्त्री- संत्रस, स्त्री-पीड़ा, स्त्री- विवशता, स्त्री विश्वास, आस्था को प्राथमिक रूप से रचती चलती हैं।

*'पढ़ा गया हमको/ जैसे पढ़ा जाता है कागज/बच्चों की फटी कॉपियों का /चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने के पहले!/ देखा गया हमको/ जैसा कि कुफ्त हो उनीदे/देखी जाती है कलाई घड़ी/अलस्सुबह अलार्म बजने के बाद।"[9]*

(कहती हैं स्त्रियाँ, अनामिका)

समकालीन कविता के मुख्य पृष्ठ पर हिंदी कविता में कवयित्रियाँ स्त्रियों की उन अंतर्छवियों को मुख्यधारा से जोड़ती है जिसमें एक नौकरपेशा स्त्री के साथ-साथ एक घरेलू स्त्री, एक दलित स्त्री, एक मजदूर स्त्री, एक धान रोपती, प्रेम करती स्त्री, चक्की पिसती स्त्री, चूल्हा फूँकती स्त्री, आँगन रोपती, धान कूटती, उड़ती, गाती, मेरे स्त्री के साथ-साथ साँवली-लड़की और काली स्त्रियों के रंग भेद के अनेक आयाम मौजूद है। इस अर्थ में हिंदी-कविता में स्त्री-बीज से उत्पन्न प्रेम, हर्ष, उन्माद, उल्लास की असंख्य श्रृँखलाओं के साथ-साथ बेघर स्त्रियों के बेघर सपनों को शोकगीत भी में उपास्थित हैं। कवयित्रियों की इस तरह की रचनाशीलता, और सृजनता में वे रचनाएँ बेंचमार्क बन गई हैं जहाँ उत्पीड़न, उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार और त्यागे जाने के बाद भी स्त्री का क्षमाशील रूप सामने आया है। क्षमा करती स्त्रियाँ वास्तव में विमर्शों बहसों की दुनिया से अलग केवल स्त्री- संसार की वास्तविकता को दर्ज करती हैं। जहाँ स्त्री अपनी स्वतंत्रता, अपनी अस्मिता की पूर्णता पुरुष-विरोधी स्वर में नहीं अपितु उसके साथ में पाती हैं-

*'उसने पूछा स्त्री से,/यदि बचाना ही पड़े तुम्हें/ तो किसे बचाओगी,/ कविता को/या मुझे?/स्त्री उठी/और घर के बाहर/रख आयी सारी कविता/ इस तरह/बचाया स्त्री ने उसे/ और बचायी/ अपने भीतर कविता चुनौती-दर-चुनौती/हर जन्म में।"*

(सुनीता जैन, राग और आग)

समकालीन कविता में स्त्री-पक्ष के संघर्षों एवम् उल्लास का बोध रचती स्त्री-कवयित्रियों की कविताएँ हमें मोमेंटरी फिलीसिट्टे (Momentary Felicitate) या क्षणिक सुख नहीं देती अपितु बेहद गहराई में जाकर प्रत्येक मनुष्य में गहरी बेचैनी, व्याकुलता और आर्द्रता को बोती हैं। स्त्री- राग के स्वर जीवन का सीधा संवाद रखते हैं। यहाँ स्त्रियों को तकलीफ़, अनुभूतियों को चित्रित करने के लिए स्वानाभूतपूर्ण इनकारवेशन (परमाया परिनवेश) नहीं करना पड़ता। अपितु स्त्री राग का उद्रेक स्त्री-पीड़ा में स्वतः ही प्रस्फुटित होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इकीसवीं सदी की कविता, या समकालीन कविता का वैचारिक मानचित्र हिंदी - कवयित्रियों की स्त्री पक्ष की कविता के बिना अधूरा है। हिंदी-कविता में हस्ताक्षर नयी कवयित्रियों के साथ-साथ नयी कवयित्रियों में उभरते स्त्री-पक्ष के स्त्रीवादी स्वर को अनदेखा नहीं किया जा सकता। स्त्री के अन्तर्मन के जगत को खोलकर रखने कवयित्रियों के नए कलेवर, नए तेवर के साथ हिंदी-साहित्य में उपस्थित हुई हैं और कविता के लिए नया मुहावरा गढ़ रही है। साहित्य में विमर्शों से ऊपर स्त्री-रचनाकारों की रचनाओं को रचना की तरह देखने, समझने की जरूरत है।

**संदर्भ सूची–**

1. कृष्ण दत्त पालीवाल, उत्तर-आधुनिकता की ओर, पृ.17/2. अशोक वाजपेयी, इसनीसवीं सदी : स्त्री कविता परिदें, अगस्त-सितम्बर, 2021, पृ.9/3. सविता सिंह, वहीं, पृ.14 /4. सुनीता जैन, राग और आग, पृ. 130 1 5. वहीं, पृ. 130/6. विमल कुमार, इक्कीसवीं सदी : स्त्री कविता, परिदें, अगस्त-सितम्बर अंक 2021, पृ. 08 /7. वहीं, पृ. वहीं/8. निर्मला युतुल, बेघर सपने, फ्लैप से उद्धत /9. वहीं, पृ. 18/10. अनामिका, कहती हैं औरतें, पृ. 146/ 11. सुनीता जैन, राग और आग, पृ. 141/12 वही, क्षमा, पृ. 211/13. अनामिका अनु, इक्कीसवीं सदी, स्त्री-कविता, परिदें, अगस्त-सितम्बर, अंक. 2021, पृ. 46।

❑

# सावर जनजाति

• सी. लाल सोता एवं प्रकाश चन्द्र उरांव •

बिहार की आदिम जनजाति सावर का निवास मुख्य रूप से ओड़िसा, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार के पूर्वी क्षेत्र सिंह भूमि में है। सावर के विषय में एस.सी राय के मतानुसार ये हिल खड़िया परंपराओं के पोषक हैं और संभवतः उनके साथ इनके बहुत निकट के संबंध रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सावरों ने भी महानदी की घाटी जो अब गंजाम और विशाखापट्टनम जिलों के नाम से जाने जाते हैं इस क्षेत्र में प्रवेश किया। यहीं से इन्होंने मुख्य जनजाति से अलग होकर उड़ीसा की पहाड़ियों में अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर लिया। इनका निवास धालभूम और बीरभूम में बना।

लेकिन आर.बी रेसल की धारणा कुछ और है। सावरों की शास्त्रीय कहानियों के आधार पर रसेल कहते हैं कि ऐसा लगता है सावर के प्रथम पूर्वज किसी समय 'भील' कहलाते थे। रसेल कहते हैं सावर शब्द 800 ईसा पूर्व से 1200 ईसवी के बीच संस्कृत साहित्य की विभिन्न पुस्तकों में उल्लखित हुआ है। इससे यह संभावना बनती है कि सावर मुंडा जनजाति थी जिसका गोंडों से पूर्व इस क्षेत्र या भू-भाग पर अधिकार था।

धालभूम में रहने वाले सावर संभवतः मूल रूप से उड़ीसा और उसके आस-पास से यहाँ आए क्योंकि इन क्षेत्रों में सावर आज भी वैवाहिक संबंध स्थापित करते हैं। यह जनजाति मुंडारी समूह की बोली बोलते हैं। यह अपना जीवनयापन मजदूरी, वनौपज को इकट्ठा करके उसे बेचकर या देशी शराब बनाकर बेचते हैं साथ ही खेती-बाड़ी भी करते हैं। सावर समुदाय पंचायत पर आधारित है। सावर सजातीय विवाह करने वाले होते हैं तथा इन्हें चार उप जन-जातियों में विभाजित किया जाता है।

धालभूम सब़ डिवीजन में सावर जनजाति की जाहरा उप-जनजाति निवास करती है जबकि इसकी तीन अन्य उप-जनजातियाँ उड़ीसा में निवास करती है। सावरों में कोई गोत्र प्रथा नहीं होती है। धालभूम में सावरों के बीच विवाह रिश्तेदारी के आधार पर होती है। तीन पीढ़ियों तक के नातेदारों के साथ विवाह वर्जित होता है। इनमें नियोग और बहन संघ दोनों की तरह की प्रथायें वर्तमान हैं। इनमें विधवा विवाह की भी अनुमति है। शादी-विवाह तय कराने में कन्या दहेज की प्रथा आम है। दहेज की रकम साधारणतः विवाह की बात तय कराने वाले बिचौलिये की मदद से ही निर्धारित की जाती है। इस जनजाति में विवाह का प्रस्ताव लड़का पक्ष से आता है। चूंकि सावरों में बाल विवाह का प्रचलन है, विवाह के एक या दो दिन बाद दुल्हन अपने पिता के घर लौट जाती है। इसके बाद उसे अपने पति को देखने की अनुमति नहीं होती है। लड़की का दूसरा विवाह तब होता है जब वह बालिग होती है। विवाह फाल्गुन (फरवरी-मार्च) तथा बैशाख (अप्रैल-मई) माह में संपन्न होते हैं। लड़के की ओर से लड़की के पिता के घर पर बारात आती है। विवाह संपन्न कराने के लिए एक ब्राह्मण पुजारी होता है। वर द्वारा कन्या के ललाट पर सिंदूर लगाया जाता है। यह विवाह बंधन का प्रतीक है।

सावरों की पारिवारिक संरचना पितृसत्तात्मक होती है तथा पैतृक संपत्ति पिता से पुत्र को हस्तांतरित होती है। पिता की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में संपत्ति बराबर बाँट दी जाती है। सावरों में अधिकतर एकल परिवार का प्रचलन है। विवाह के बाद युवा दंपत्ति अपनी अलग गृहस्थी बसाते हैं। सावरों में एक पत्नी का रिवाज है लेकिन बहुविवाह से भी ये अनजान नहीं हैं। पिता के जीवनकाल में उसके विवाहित पुत्रों को जीवन-यापन के लिए पिता संपति का कुछ हिस्सा उन्हें दिया जाता है। विवाह होने तक लड़कियाँ भी भरन-पोषण के लिए संपत्ति की अधिकारी होती है। दोबारा विवाह होने तक परिवार की

कोई विधवा भी अपने पालन-पोषण के लिए संपत्ति की अधिकारी होती है। इस जनजातीय समुदाय में गोद लिये गए बालक का भी संपत्ति पर पूर्ण अधिकार होता है।

धालभूम में रहने वाली सावर जनजाति का हिंदूकरण हो गया है। यह जनजाति काली तथा मनसा देवी की उपासना करते हैं। इस जनजाति के धार्मिक रस्म रिवाज ब्राह्मण पुरोहित संपन्न कराते हैं। आर्थिक बदहाली के कारण इनका समाजिक स्तर तुलनात्मक रूप से बहुत निम्न है। वर्तमान समय में किरास, लोहरा आदि समान जातियों की तुलना में हिंदू सामाजिक व्यवस्था में सावरों का स्थान ऊँचा नहीं है। नृत्य और गीत संगीत सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है। ये लोग जन्म, विवाह तथा अन्य उत्सवों पर नाचते गाते है। चावल की शराब या देशी शराब इनकी सामाजिक जरूरत बन गई है। सावर, डोमकच तथा पंतासल्या नाच करते हैं। इस नाच में एक व्यक्ति नगाड़ा बजाता है जिसमें सामने स्त्रियां गोल घेरा बनाते हुए नृत्य करती हैं।

इस जनजाति के आवास आयताकार होते हैं। मिट्टी से बने घरों को साल, केन्द और महुआ की लकड़ी तथा घास फूस से छाया जाता है। सामान्यतः इसमें एक ही कमरा होता है जो सोने के काम में आता है, इसका प्रयोग रसोई, अतिथिशाला और भंडार के रूप में भी होता है। इनके घर में एक दरवाजा होता है लेकिन खिड़की नहीं होती है। घर के अंदर लकड़ी के ताखे (रैक) बने होते हैं। जिस पर घरेलू उपयोग के सामान रखे जाते हैं। सामान्यतः चूल्हा कमरे के भीतर ही दक्षिण पश्चिम किनारे पर बनाया जाता है। इनके घर निश्चित क्रम में नहीं बने होते हैं।

सावर पुरूषों का पहनावा धोती और आंगा (शर्ट) होता है जबकि स्त्रियों साड़ी इस तरह बाँधती है कि उससे उनके शरीर का ऊपरी हिस्सा भी ढंग जाता है। चार-पाँच वर्ष तक के बालक बालिकायें वस्त्र धारण नहीं करते। कपड़े बाजार से खरीदे जाते हैं।

दयनीय आर्थिक दशा के कारण सावर महिलायें जेवर नहीं खरीद पाती हैं। इनकी कुछेक महिलाओं के पास ही पीतल के गहने देखे जाते हैं। सामान्यतः इनके गहने घासों की मनकेदार माला, काँच के होते हैं। स्त्रियों पीतल की चूड़ियाँ, जिसे 'कहरू' कहते हैं पहनती हैं। त्यौहारों तथा अन्य खुशी के मौकों पर युवा सावर लड़कियाँ अपने बालों को साल तथा अन्य फूलों से सजाती हैं।

यह जनजाति बाजार से खरीदे गए मिट्टी के बर्तनों में भोजन पकाती है। खाने की वस्तुयें धातु की थालियों में परोसी जाती है। ये ताड़ के पत्तों से चटाई बनाते हैं। इनके घर में पत्थर की चक्की (जाता), गुलेल, टोकरियाँ, कुल्हाड़ी (टांगी), तीर कमान तथा झाड़ू आदि सामान देखे जाते हैं।

सावरों की अपनी पारंपरिक पंचायती व्यवस्था है। पंचायत का प्रमुख ग्राम प्रधान होता है। प्रधान का पद वंशानुगत हुआ करता है। प्रधान को उसके कार्यों में गोरईत नामक अधिकारी मदद करता है। गोरईत संदेशवाहक भी होता है सावरों की परंपरागत पंचायत के अपने नियम-कानून हैं जिसके माध्यम से सावर समाज को नियंत्रित किया जाता है। सावर समाज में पर स्त्री गमन, जादू-टोना, चोरी तथा व्यभिचार जैसे मामलों को अपराध माना जाता है। खराब व्यवहार, बाँझपन, आलस्य तथा व्याभिचार के आधार पर तलाक की अनुमति होती है। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पहलुओं से जुड़े मामलों की भी पंचायत में सुनवाई होती है। इस प्रकार इनकी पंचायत परंपरागत कानूनों का संरक्षक होती है।

आज की बदलती परिस्थितियों और परिवेश में सावर जनजाति अन्य जनजातियों और गैर जनजातियों के संपर्क में आ रही है। इससे इनका जीवन भी बदल रहा है।

❑

**साभारः** बिहार जनजातीय कल्याण शोध संस्थान

# झापांग : परंपरा के बहाने वस्तुगत सत्य की खोज

• डॉ. सुजाता कुमारी •

झारखंड और उससे सटे इलाकों में अगस्त माह के शुरुआत से ही लोक प्रचलित माता मनसा की पूजा आरंभ हो जाती है। इस अवसर पर पारंपरिक खेल 'झापांग' (जिसमें विषैले सर्पों को लेकर करतब दिखलाया जाता है।) खेला जाता है।

डॉ. सुजाता कुमारी

पता– कुमार आयुर्वेद भवन, जैनामोड़, बोकारो, पिन-829301 ( झा.ख.)

मो. 095801-10605

किसी देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कुछ चीजें जन्म लेती हैं और कालांतर में परंपरा के रूप में रूढ़ हो जाती हैं। 'झापांग' बिहार-झारखंड राज्य और उससे सटे बंगाल के स्थानीय क्षेत्रों में प्रचलित ऐसी एक प्रथा है जिसमें मनसा पूजा के दौरान गुणी विषैले साँपों को अपने शरीर पर लपेटकर करतब दिखलाता है। कथाकार के अनुसार 'झापांग' अर्थात् 'सर्प मन्त्र निष्णात गुणियों का अश्वमेध'। "जैसे, अश्वमेध यज्ञ में यज्ञ का घोड़ा निर्बाध परिभ्रमण कर जितनी सीमा लाँघ लेता है, यज्ञ करने वाला राजा उतनी सीमा का चक्रवती सम्राट घोषित होता है, उसी तरह झापांग के बाद झापांग का मुखिया उस क्षेत्र का गुणी श्रेष्ठ होता है।"[1] अर्थात् यह एक ऐसा पारंपरिक खेल या प्रदर्शन कहा जा सकता है जिसमें मनसा माता पर आस्था और विश्वास के आधार पर गुणी फन काढ़ते-फुफकारते विषैले साँपों को अपनी आज्ञा के अनुसार साधता रहता है।

नाग पंचमी के बाद मनाये जाने वाले मनसा पूजा का वर्णन अनेक पौराणिक कहानियों, श्लोकों और किंवदंतियों के माध्यम से 'झापांग' कहानी में किया गया है। महत्त्वपूर्ण यह कि स्थानीय मान्यताओं का आधार लेकर कहानीकार ने यहाँ बड़े ही सजग और अनवेष्णात्मक दृष्टिकोण के साथ तथ्यपरक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है।

**मनसा पूजा की अवधारणा :** यह पूरे भादों मास में मनाया जाने वाला त्योहार है। लोक में देवी मनसा के जन्म को लेकर कई कथाएँ एवं मान्यताएँ प्रचलित हैं। अलग-अलग पुराणों में मनसा की अलग-अलग किंवदंतियाँ हैं- यथा विष्णु पुराण के चतुर्थ भाग में एक नागकन्या का वर्णन है जो आगे चलकर मनसा के नाम से प्रचलित हुई। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अंतर्गत भी एक नागकन्या का वर्णन है जो शिव तथा कृष्ण की भक्त थी। बंगाल में 13वीं तथा 18वीं सदी में लिखित 'मंगलकाव्य' में देवताओं के संदर्भ में लिखित है। विप्रदास पिल्ले के 'मनसाविजय' के अनुसार वासुकी नाग की माता ने एक कन्या की प्रतिमा का निर्माण किया जो शिव के वीर्य से स्पर्श पाते ही नागकन्या बन गई और मनसा कहलाई। झापांग कहानी में मनसा देवी का आभिर्भावित स्वरूप बहुत कुछ मनसाविजय से ही प्रेरित कही जा सकती है। इस कहानी में लेखक ने बतलाया है कि वह आस्तिक मुनि की माता हैं, बासुकी नाग की बहन है और जरुत्कारू मुनि की पत्नी हैं। मनसा देवी भगवान शिव की ही पुत्री है और गणेश और कार्तिक की सौतेली बहन। मूल रूप से अनार्य शिवजी द्वारा नाग-कन्या के साथ रमण के फलस्वरूप जन्मी थी मनसा। जब आर्यों ने उन्हें स्वयं में शामिल करने के लिए आर्य कन्या पार्वती से शादी करा दी, तो वे अपनी पहली पत्नी और पुत्री को पाताल लोक में छोड़ कर कैलाश पर्वत पर जा बसे और देवताओं में शामिल हो गए। तब बासुकी नाग ने कन्या मनसा का पालन-पोषण किया।

**देवत्व प्राप्ति हेतु कन्या मनसा का संघर्ष और उनकी प्रतिमा से संबंधित दृष्टिकोण :** मनसा को जब संज्ञान हुआ कि वह देवाधिदेव शिवजी की पुत्री है तो वह अपने हक़ की प्राप्ति के लिए देवलोक पहुँच गई। शिव जी उसे अपने साथ घर ले गए। जब पार्वती

जी ने देखा तो बिना सोचे-समझे ताव में आकर उसकी एक आँख फोड़ डाली। ऐसे में कानी मनसा को कोई भी देवी मानने को तैयार नहीं था। धरती के राजा चाँद सौदागर ने तो 'चेंग-मुड़ी' कह कर उसका अपमान किया। कन्या मनसा इस अपमान से विचलित हो उठी। मन-ही-मन उसने चाँद सौदागर को सबक सिखाने की ठानी। 'अब देवत्व की प्राप्ति के साथ ही उसे प्रतिष्ठा भी पानी होगी। केवल केवट बंधु और उनके कुटुम्बों की पूजा पाकर यह कभी नहीं मिलने वाला है; यह तभी मिलेगी जब वह धरती के राजा, चाँद सौदागर की पूजा लेगी।' ऐसा विचार कर उसने प्रतिकार में उसके छह पुत्रों को अपने नागों से डंसवा कर मार डाला, और उनकी सातवीं संतान लखिन्दर को भी उसके विवाह के दिन ही डंसवा दिया। लखिन्दर की नवेली दुल्हन बेहुला, जो बड़ी जिद्दी थी, तब नाना प्रकार के कष्ट उठाती हुई देवताओं के दरबार में गई और अपने पति को पुनः जीवित ले आयी। अब चाँद सौदागर भी मनसा देवी की पूजा के लिए राजी हो गया। पर, यहाँ भी रुकावट हुई। पूजा सशर्त तय हुई, कि चाँद सौदागर देवी मनसा की पूजा अपने बायें हाथ से करेगा क्योंकि, उसका दाहिना हाथ तो अपनी इष्ट देवी दुर्गा के लिए समर्पित है। माता पार्वती ने भी चाँद सौदागर की शर्त को अपनी मुहर यह कह कर लगा दी कि 'आखिर गणेश और कार्तिक की बराबरी नहीं कर पाएगी न यह नाग कन्या!'

माता पार्वती के इस छल से मनसा क्रोध से फुफकार उठी। अतः अपने साथ उसने अपने सौतेले भाई, गणेश और कार्तिक की पूजा अस्वीकार की और उनकी जगह शत्रु से भक्त बने चाँद सौदागर और नेड़ा की मूर्तियों को जगह दी।

उपर्युक्त कथा को देखा जाय तो यह सिर्फ मनसा देवी का अपनी प्रतिष्ठा और देवत्व प्राप्ति हेतु किया गया संघर्ष ही नहीं है वरन् यह देवताओं के छल-प्रपंच को भी दर्शाता है। देवी पार्वती का कन्या मनसा के अधिकार को समान भाव से न देखना और अपने पुत्रों से कमतर आंकना उसका उपहास करना ही है।

**वंचितों की देवी मनसा बनाम अवर्ण से सवर्ण बनने की कहानी :** कथाकार प्रह्लाद चंद्र दास ने कहानी में लोक में प्रचलित मान्यता के साथ ही उसके कारणों को जाँचने-परखने का कार्य भी किया है। मनसा देवी की पूजा छोटी जात के लोगों के घरों होता है। इस लिए मनसा देवी को 'केवटों की कुलदेवी' कहा गया है। लोक कथा की माने तो, एक बार दो केवट भाइयों के जाल में मनसा देवी का घट फँस कर उठा था जिसे वे अपने घर उठा कर ले आये थे। उन्होंने उसकी पूजा-अर्चना की जिसके फलस्वरूप वे सारी विपदाओं से मुक्त हो गए और धन-धान्य से परिपूर्ण होकर संपन्न जीवन बिताने लगे। फिर जिसने भी उनकी पूजा की, उनको मन-माँगी मुरादें मिली। इस प्रकार देवी की आलौकिक शक्ति को पाने के लिए छोटी जात के लोग-केवट, मुसहर, मोची आदि ने उनकी पूजा-अराधना शुरू करी। यह देवी गरीबों-वंचितों को सरलता से सुलभ है। लोग इनकी पूजा पूरे भादों मास अपने मन के अनुसार किसी भी दिन कर सकते हैं; वह भी बिना मूर्ति के स्थापना किये केवल उनकी घट-वारी (घट में वारी, अर्थात् जल) की पूजा। बलि के लिए पाड़े या पाठे की जरूरत नहीं होती; उसकी जगह मुर्गी या बत्तख कुछ भी चल सकता है। इस पूजा में एक विशेषता यह भी है कि इसमें बड़ी जातियों के लोगों की दुर्गा या काली पूजा जैसी न तो ताम-झाम होती है और न ही मास, दिवस और मुहूर्त की झंझट। न ही अधिक दिनों तक अनुष्ठान रखना पड़ता है और न ही खान-पान पर विशेष ध्यान। संभवतः इसी छूट के लिए माता मनसा की पूजा को 'मोनेर मनसा' (मन की मनसा) कहा गया है।

उन्होंने पात्रों के संवाद के द्वारा तर्क-वितर्क की शैली में इसे समझाने की कोशिश की है। नई पीढ़ी के कुछ नौजवान मनसा पूजा के दौरान गाँव आये हुए हैं। विनोद उन्हीं में से है। उसके अनुसार "उसके पुरखों को जब काली और दुर्गा जैसी देवियों को पूजने का हक़ नहीं मिला होगा, तो उन्होंने उनके, ख़ास कर, दुर्गा देवी के छोटे संस्करण की कल्पना की होगी। और इस तरह मनसा देवी का आभिर्भाव हुआ होगा क्योंकि, दुर्गा देवी की तरह ही मनसा देवी की प्रतिमा के साथ सरस्वती और लक्ष्मी की प्रतिमा भी यहाँ है। अगर उधर, दुर्गा देवी ताकत की प्रतीक हैं, तो यहाँ मनसा देवी।"[2]

लेखक ने कहानी में सिर्फ वंचितों के ताकत या प्रतिष्ठा की प्राप्ति की जरूरत को ही नहीं दिखलाने का प्रयास किया है; अपितु उनकी स्थापना के पीछे के मंतव्य को भी टटोला है। हमारे समाज की मानसिकता रही है कि लोग दूसरों की चीजों की नकल जल्दी करते हैं। यह भी देखने को मिलता है कि हमारी प्रतिस्पर्धा जिनके साथ रहती है हम उन्हीं की चीजों के प्रति ज्यादा आकर्षित भी होते हैं, हम उन्हीं का अनुकरण करना चाहते हैं। कहानी में लेखक एक पढ़े-लिखे युवा पात्र सुखदेव

के मुख से कहलवाते हैं कि "हो सकता है, यह देवी सवर्णों द्वारा स्थापित देवी-देवताओं के प्रतिवाद स्वरूप सिरजी गयी हो। हालाँकि इस देवी के बगैर भी उनका काम चल रहा होगा लेकिन, हमलोग जब आगे बढ़ते हैं या बढ़ना चाहते हैं, तो नकल सवर्णों की ही करते हैं। हमारी बेंच-मार्किंग वही लोग हैं।"3 यह जो बेंच-मार्किंग वाली बात है वह मनुष्य की मानसिकता का वास्तविक सच है। आखिर सवर्ण और अवर्ण की लड़ाई में यही देखा जाता रहा है कि अवर्ण सवर्ण जैसा ही बनना चाहते हैं, उन्हीं की तरह आचरण कर। यह एक तरह की स्वीकार्यता ही कही जाएगी कि हम उनका विरोध तो करते हैं पर, आचरण-अनुकरण भी उन्हीं का करते हैं; जबकि होना तो यह चाहिए कि जो उनकी अपनी प्रवृति है; जैसे वे हैं उसी रूप-गुण-बोध के प्रति वे स्वाभाविक बने रहें। अपनी स्थापना अपने ही ढंग से करते हुए ही वे अपना महत्त्व बनाये रखें।

**प्रथा में व्याप्त कुरीतियाँ :** 'भरन' एक प्रकार की अंधी प्रथा है। ऐसा मानना है कि इसमें देवी माँ का आगमन किसी भी भक्त के ऊपर हो जाता है। वह भक्त अपने शरीर और वाणी के माध्यम से तरह-तरह की चेष्टाएँ करता है, जैसे - उछल-कूद-नृत्य और सिर का घुमाव इत्यादि। वाणी कभी तेज होती है कभी मंद, कभी भक्त पर सवार माँ लय-ताल और सुर में गाने लगती है तो कभी तेज स्वर में क्रोध प्रकट करती है। माँ के सवार हो आने के बाद 'भरन' हुआ भक्त किसी को कुछ भी कह सकता है; किसी के मन के भेद को ताड़ने के स्तर तक! वह किसी बुरे व्यक्ति को गुनाह के लिए दंडित कर सकता है तो किसी को जो इच्छा आदेश दे डालता है। लोग डरते-थरथराते हैं कि जाने देवी की क्या इच्छा हो आये और वह किससे रुष्ट हो जाय।

कहानीकार ने यहाँ रेखांकित किया है कि कई बार यह 'भरन' प्रायोजित होता है। सीधे शब्दों में कहा जाय तो यह ढोंग का प्रदर्शन है। अगर चमत्कार होता तो वह भक्त बेफिक्र होकर सर घुमाता। 'भरन' जैसी प्रक्रिया लोगों को भ्रमित करने वाली और अंधविश्वास का रूप है जिसे एक सामाजिक बुराई के रूप में देखा जा सकता है।

कहानी के अंतर्गत जमुआटाँड़ गाँव में क्षेत्र के नामी और कई बार के घोषित गुणी-श्रेष्ठ लालजी गुणी का झापांग दल साँपों के लेकर के साथ आया हुआ है। गुणी ने माता का आह्वान कर जैसे ही 'जात्' (मनसा पूजा में गाया जाने वाला भक्ति गीत; यहाँ पर मंत्र) शुरू की, प्रशिक्षित शार्गिदों ने उनकी पंक्तियों को सुर में बाँध कर गाना शुरू कर दिया। 'जात' स्थायी से मध्य होता हुआ शीघ्र ही द्रुत लय में पहुँच गया और विषम ढाकी का स्वर गूँजने लगा। 'जात' के चरम में पहुँचते ही गुणी ने अपने शरीर में जगह-जगह विषैले साँपों को लपेटना शुरू किया। यह समय भादों की भारी गर्मी और उमस वाला था। सांप परेशान होकर बार-बार छिटक कर निकल जाने की चेष्टा कर रहे थे। लालजी गुणी उन्हें पकड़-पकड़ कर यथास्थान स्थापित करने की चेष्टा कर रहे थे। इधर विषम ढाकी की गूँज़ जो भीतर तक हिला देने वाली थी, इस गूँजती आवाज से शार्गिदों के सामने कटोरे में रखा पानी बार-बार उछल कर बाहर आ रहा था। लोगों में फुसफुसाहट होने लगी कि कोई साँपों को मंत्र विद्या से चाल यानी छेड़ रहा है। गुणी के निर्देशानुसार शार्गिदों ने काट का मंत्र पढ़ना शुरू किया। पर सांप थे कि वे बंद पिटारियों से बार-बार रेंग कर निकल जाने का प्रयास कर रहे थे। लालजी गुणी ने अपने क्रोध को नियंत्रित कर 'जात' को बीच में रोक कर प्रतिद्वंद्वियों से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि वे छिप कर वार न करें और उनके देवताओं को तंग न करें। पर ज्यों ही नाराज़ देवी को मनाने के लिए उनकी ओर निहारते हुए हाथ जोड़ कर प्रार्थना की और इसी क्रम में जुड़े हाथों को ऊपर उठाया तो काले तक्षक ने उनके हाथों को डंस लिया। गुणी वहीं जमीन पर गिर पड़े। उनके कुछ शार्गिद सांप को पकड़ने उसके पीछे दौड़े, कुछ गुणी के अंगों से लिपटे साँपों को पिटारियों में भरने लगे। आनन-फानन में उनके मित्र-विद साथी विष झाड़ने में व्यस्त हो गये। लोग इसे 'कुनेम' से जोड़ कर देखने लगे। इधर जमुआटाँड़ के सबसे अधिक पढ़े-लिखे और पुजारी रघू बाबू गलवस्त्र होकर साष्टांग दण्डवत की मुद्रा में मनसा माता की प्रतिमा के सामने लेट गये और माँ से हर कुनेम के लिए क्षमा-याचना करने लगे।

गाँव के पढ़े-लिखे नौजवानों ने डाक्टरी इलाज की कोशिश की पर लोगों की अंधी आस्था ने उनको मानने से इंकार कर दिया। वे झाड़-फूंक और मंत्र-जाप द्वारा ही गुणी को ठीक करने के हठ में लगे हुए थे। अंततः गुणी के मुँह से झाग आने लगा और एक हिचकी के साथ ही उनकी मुत्यु हो गई।

यहाँ दृष्टव्य है कि झापांग के दौरान की यह पूरी घटना एक ऐसे वातावरण और समय में घटित होता है जिसने समस्या को उत्पन्न किया है। सापों के बिदकने का एक कारण यह भी कि कई अन्य जगहों से लगातार

झापांग करने की वजह से वे थका हुआ महसूस कर रहे थें। यहाँ 'कटोरे के पानी का उछल का बाहर आ जाना' और 'सर्पदंश' जैसी चीजों को लेकर लोगों ने जिस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ प्रकट करी, वह सब उनके अल्पज्ञान और अंधविश्वास के कारण है। लेखक ने यहाँ मनोवैज्ञानिक शैली में पूरे घटनाक्रम को बड़े ही सहज ढंग से रखा है। इससे एक सामान्य पाठक भी लोगों की मानसकिता और लोक में निहित समस्याओं से अवगत हो जाता है। यह भी कि चिकित्सा विज्ञान के इस विकसित दौर में झाड़-फूँक और करम-भाग्य पर विश्वास हमारे समय के लिए एक बड़ी चुनौती है।

**कहानी की संरचनात्मक विशेषता :** सारी चीजों को देखते हुए भी कहानी को जो बात विशेष बनाती है वह है उसकी रचनात्मक बुनावट। एक क्षेत्र विशेष की खूबियों-खामियों को आँखों देखा हाल जैसा वर्णन, बहुत कुछ रिपोतार्ज की शैली में। यह लेखक का अनवेषणात्मक दृष्टिकोण है कि उन्होंने क्षेत्र विशेष की भाषिक, लोक-व्यवहारिक गतिविधियों, आपसी सरोकारों और रिश्ते-नाते आदि सभी बातों पर लिखने से पहले एक-एक चीज का सूक्ष्म अवलोकन किया है; लौकिक-अलौकिक और मिथकीय बातों आदि पर गहन अध्ययन-मनन और दृष्टिकोण के साथ।

पहले भाषिक प्रयोग को कुछ उदाहरणों से इसे समझते हैं। इलाके में मनसा पूजा की धूम मची है तो लेखक संस्कृत के लोक का प्रयोग करते हैं 'मनसा-आस्तिकस्य मुनेर्माता भगिनी वासुकेस्तथा' परंतु मिथकीय किवदंती के अंतर्गत जब वे कथा सुनाते हैं तो क्षेत्र विशेष की भाषा में (बंगला भाषा में), जैसा कि वहाँ प्रयोग होता रहा हैं, का प्रयोग बार-बार करते हैं- 'आज बोड़ो आनंदेर दिन चम्पक नगरे, लखिन्दर जन्म लिलो सनुका उदरे।' मिथकीय बातों से विलग जब वे सामान्य कथा कहते हैं तो पात्रों के अनुसार भाषा प्रयोग मिलता है।

इसी प्रकार कहानी में मिथकीय उदाहरणों में भी देखा जा सकता है। यह कि इस कहानी में उभरते औद्योगिक भारत के ग्रामीण तबके का शहर बनने की प्रक्रिया का दर्शन है तो नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच चीजों को लेकर वैचारिक भेद भी दिखता है। पुरानी पीढ़ी जहाँ मिथकों में निहित कहानियों को लेकर आज भी उसी अनुसार आचरण करती है वहीं नयी पीढ़ी मिथकों से प्रस्तुत उदाहरणों का विस्तृत और तर्कपूर्ण विलेषण करती है। कहानी का पात्र धनश्याम, जोकि गाँव का जमाई है, शादी से पहले वह गाँव का भगिना था। अतः गाँव के लोग उसे प्रचलित कहावत- 'जार, जवैया, भगिना, तीन न होवे अपना।' कह कर चिढ़ाया करते हैं। इस पर धनश्याम लोगों को मनसा माता के पुत्र और नाग कुल के भगिना आस्तिक मुनि के विषय में बतलाते हैं कि किस प्रकार महाभारत युद्ध के बाद परीक्षत के पुत्र, जन्मजेय से उसने अपने मामाकुल के साँपों की रक्षा की थी। उसका यह तर्क अकाट्य था। कारण यह भी था कि उसने अपने तर्क से इस प्रदेश में भगिना के महत्त्व को भी मजबूती से प्रस्तुत किया था।

कहानी में पात्रों के पहनावे और रहन-रहन को देखें तो उनके अपने गंवई-शहरी अंदाज, रहन-सहन और पहनावे दृष्टिगत होते हैं। कहानी के पात्र चामु सिंह के विषय में लेखक लिखते हैं- "कालिख से सनी एक गंजी, उसी तरह का चीकट हाफ पेंट और गले से लटकता, कोयले की कालिख से सना एक गमछा। कोयला खदान से लौटते हुए चामू सिंह की यही पोशाक होती है।"5 वहीं शहर में क्वार्टर में रहने वाली सुसंपन्न, पढ़ी-लिखी आधुनिक महिला का चित्रण मिलता है। वह जब अपने पति के साथ गाँव आती है तो उसकी साड़ी और गहनों की चर्चा पूरे गाँव में होती है। उसके मूल्य से लेकर उसकी कलफों तक का वर्णन होता है। यह पात्रों की आर्थिक अवस्था और स्टेट्स को दर्शाती है। कहानी में इस प्रकार से पात्रों का विश्लेषण क्षेत्रीय लोगों की जीवंत प्रस्तुति है।

**निष्कर्ष :**

'झापांग' कहानी एक क्षेत्र विशेष में प्रचलित पूजा और खेल के बहाने अनेक पौराणिक कहानियों, मिथकों, किवदंतियों और जनविश्वासों को न सिर्फ रोचक कथात्मक शैली में प्रस्तुत करती है वरन् उन सबकी मनोवैज्ञानिक और तार्किक विवेचन भी प्रस्तुत करती है जो कि सामान्य से सामान्य पाठक को चीजों को देखने-समझने की एक स्पष्ट दृटि भी देती है। पिछरी हुई लोकमान्यताएँ जो कि रूढ़ हो चुकी है, उसे शिक्षा और विज्ञान के राह चल कर ही दूर किया जा सकता है।

**संदर्भ :**


1. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, रश्मि प्रकाान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-2017, पृष्ठ-137
2. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-131
3. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-132
4. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-129
5. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-135


❑

# बाजार संस्कृति में लोक साहित्य

• भालचन्द्र जोशी •

**भालचन्द्र जोशी**

**परिचय-** जन्म : 17 अप्रैल 1956। शिक्षा : एम-ए- (अंग्रेजी)। कार्य क्षेत्र इंजीनियरिंग। आदिवासी जीवन पद्धति तथा कला का विशेष अध्ययन। निमाड़ की लोक कलाओं और लोक कथाओं पर काम। लघु-पत्रिका 'यथार्थ' और 'कथादेश' का संपादन। टेलीविजन के लिए फिल्म लेखन। कहानियों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद। हायर सेकण्डरी हेतु 'इनवाइरॉन्मेंटल एजुकेश एण्ड डिजास्टर मैनेजमेंट' पुस्तक प्रकाशित। कहानी संग्रह 'नींद से बाहर', 'पहाड़ों पर रात', 'चरसा', 'पालवा', 'जल में धूप' और 'हत्या की पावन इच्छाएँ, 'यथार्थ की यात्रा' तथा उपन्यास 'प्रार्थना में पहाड़' और 'जस का फूल' प्रकाशित। सम्मान : 'वागीश्वरी पुरस्कार', 'अम्बिका प्रसाद दिव्य स्मृति पुरस्कार', शब्द-साधक जनप्रिय लेखक सम्मान', 'अभिनव 'शब्द-शिल्पी सम्मान', 'जल में धूप' के लिए शैलेश मटियानी कथा पुरस्कार।

इस बाजार में जो सबसे बड़ी दिक्कत खड़ी हो गई है, उसमें एक बात की ओर ध्यान कम ही गया है। लोक संस्कृति और बोलियों के संदर्भ में, यह कि लोग बोलियों में सक्रिय हैं, उनकी रचनात्मक रुचि और आस्था बोलियों के लेखन में हाल-फिलहाल भी मौजूद हैं लेकिन उनमें से अधिकांश के पास संस्कृति, लोक और बोली के अंतर्संबंधों का यथेष्ट अध्ययन नहीं है। जिनके पास अध्ययन की संपदा है, उनकी रुचि और प्राथमिकता में बोली का लेखन नहीं रह गया है। अचरज की बात तो यह है कि बोली के जो लेखक गाँव की चौपाल या कस्बे या छोटे शहर में सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों पर ठीक-ठाक विश्लेषण कर लेते हैं। सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों, घटनाओं को लेकर उनके पास चर्चा का एक खुला स्पेस है, वही लोग जब बोली में लेखन करते हैं तो उनका रचनात्मक रूझान सीधे भक्तिकाल पर जाकर ठहरता है और जो सैकड़ों श्रेष्ठ भक्तिकाल के गीत या रचनाएँ हैं, उनकी सामान्य और संदिग्ध पुनरावृत्ति होती है। जो सामाजिक और राजनीतिक चेतना संपन्न बोली-लेखक हैं उनके लेखन में लोक-संस्कृति का आस्था-सौंदर्य छूट जाता है।

दरअसल, किसी बोली को बचाने की कोशिश में नारे शामिल रहे तो प्रयोजन की असफलता के द्वार पहले ही खुल जाते हैं। इस बाजार समय में बोली की उपयोगिता और निरंतरता के प्रति आश्वस्ति और सांस्कृतिक चेतना और लोक-आस्था होना आवश्यक-सा है।

बोली को लेकर एक दिक्कत और नज़र आ रही है कि बोली बचाने का अभिप्राय बोली के लेखक उसे भाषा का दर्जा दिए जाने में मानते हैं। बोली को प्रतिष्ठित करने के अबोध-उत्साह में यह नहीं देखा जा रहा है कि हर प्रदेश से बोलियाँ यदि भाषा का दर्जा हासिल कर गईं तो 'राष्ट्रभाषा हिंदी' का अस्तित्व संकट में रहेगा। अभी हिंदी की पक्षधरता में हिंदी भाषी प्रदेशों और अन्य प्रदेशों के हिंदी भाषी-समाज को मिलाकर एक सम्मानजनक संख्या नज़र आती है। यदि बोलियों को भाषा बनाने की यह अबोध जिद कायम रही तो किसी दिन राष्ट्रीय स्तर पर इस बात का जवाब देना मुश्किल हो जाएगा कि हिंदी भाषा की इतनी अल्प जनसंख्या में उसे किस आधार पर राष्ट्रीय भाषा माना जाए? क्योंकि हिंदी भाषा में प्रदेशों में हिंदी भाषी वह जनसंख्या घटकर बोली जो भाषा हो जाएगी, उसके हिस्से में चली जाएगी। यह संकट फिर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी झेलना पड़ेगा जहाँ हिंदी की वकालत इसलि, कमजोर हो जाएगी कि हिंदी भाषी क्षेत्र सिकुड़कर एक छोटे टापू में तब्दील हो गया है। इसी का फायदा बहुराष्ट्रीय

झापांग करने की वजह से वे थका हुआ महसूस कर रहे थें। यहाँ 'कटोरे के पानी का उछल का बाहर आ जाना' और 'सर्पदंश' जैसी चीजों को लेकर लोगों ने जिस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ प्रकट करी, वह सब उनके अल्पज्ञान और अंधविश्वास के कारण है। लेखक ने यहाँ मनोवैज्ञानिक शैली में पूरे घटनाक्रम को बड़े ही सहज ढंग से रखा है। इससे एक सामान्य पाठक भी लोगों की मानसकिता और लोक में निहित समस्याओं से अवगत हो जाता है। यह भी कि चिकित्सा विज्ञान के इस विकसित दौर में झाड़-फूँक और करम-भाग्य पर विश्वास हमारे समय के लिए एक बड़ी चुनौती है।

**कहानी की संरचनात्मक विशेषता :** सारी चीजों को देखते हुए भी कहानी को जो बात विशेष बनाती है वह है उसकी रचनात्मक बुनावट। एक क्षेत्र विशेष की खूबियों-खामियों को आँखों देखा हाल जैसा वर्णन, बहुत कुछ रिपोतार्ज की शैली में। यह लेखक का अनवेषणात्मक दृष्टिकोण है कि उन्होंने क्षेत्र विशेष की भाषिक, लोक-व्यवहारिक गतिविधियों, आपसी सरोकारों और रिश्ते-नाते आदि सभी बातों पर लिखने से पहले एक-एक चीज का सूक्ष्म अवलोकन किया है; लौकिक-अलौकिक और मिथकीय बातों आदि पर गहन अध्ययन-मनन और दृष्टिकोण के साथ।

पहले भाषिक प्रयोग को कुछ उदाहरणों से इसे समझते हैं। इलाके में मनसा पूजा की धूम मची है तो लेखक संस्कृत के लोक का प्रयोग करते हैं 'मनसा-आस्तिकस्य मुनेर्माता भगिनी वासुकेस्तथा' परंतु मिथकीय किवदंती के अंतर्गत जब वे कथा सुनाते हैं तो क्षेत्र विशेष की भाषा में (बंगला भाषा में), जैसा कि वहाँ प्रयोग होता रहा हैं, का प्रयोग बार-बार करते हैं- 'आज बोड़ो आनंदेर दिन चम्पक नगरे, लखिन्दर जन्म लिलो सनुका उदरे।' मिथकीय बातों से विलग जब वे सामान्य कथा कहते हैं तो पात्रों के अनुसार भाषा प्रयोग मिलता है।

इसी प्रकार कहानी में मिथकीय उदाहरणों में भी देखा जा सकता है। यह कि इस कहानी में उभरते औद्योगिक भारत के ग्रामीण तबके का शहर बनने की प्रक्रिया का दर्शन है तो नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच चीजों को लेकर वैचारिक भेद भी दिखता है। पुरानी पीढ़ी जहाँ मिथकों में निहित कहानियों को लेकर आज भी उसी अनुसार आचरण करती है वहीं नयी पीढ़ी मिथकों से प्रस्तुत उदाहरणों का विस्तृत और तर्कपूर्ण विलेषण करती है। कहानी का पात्र धनश्याम, जोकि गाँव का जमाई है, शादी से पहले वह गाँव का भगिना था। अतः गाँव के लोग उसे प्रचलित कहावत- 'जार, जवैया, भगिना, तीन न होवे अपना।' कह कर चिढ़ाया करते हैं। इस पर धनश्याम लोगों को मनसा माता के पुत्र और नाग कुल के भगिना आस्तिक मुनि के विषय में बतलाते हैं कि किस प्रकार महाभारत युद्ध के बाद परीक्षत के पुत्र, जन्मजेय से उसने अपने मामाकुल के साँपों की रक्षा की थी। उसका यह तर्क अकाट्य था। कारण यह भी था कि उसने अपने तर्क से इस प्रदेश में भगिना के महत्त्व को भी मजबूती से प्रस्तुत किया था।

कहानी में पात्रों के पहनावे और रहन-रहन को देखें तो उनके अपने गंवई-शहरी अंदाज, रहन-सहन और पहनावे दृष्टिगत होते हैं। कहानी के पात्र चामु सिंह के विषय में लेखक लिखते हैं- "कालिख से सनी एक गंजी, उसी तरह का चीकट हाफ पेंट और गले से लटकता, कोयले की कालिख से सना एक गमछा। कोयला खदान से लौटते हुए चामू सिंह की यही पोशाक होती है।"5 वहीं शहर में क्वार्टर में रहने वाली सुसंपन्न, पढ़ी-लिखी आधुनिक महिला का चित्रण मिलता है। वह जब अपने पति के साथ गाँव आती है तो उसकी साड़ी और गहनों की चर्चा पूरे गाँव में होती है। उसके मूल्य से लेकर उसकी कलफों तक का वर्णन होता है। यह पात्रों की आर्थिक अवस्था और स्टेट्स को दर्शाती है। कहानी में इस प्रकार से पात्रों का विश्लेषण क्षेत्रीय लोगों की जीवंत प्रस्तुति है।

**निष्कर्ष :**

'झापांग' कहानी एक क्षेत्र विशेष में प्रचलित पूजा और खेल के बहाने अनेक पौराणिक कहानियों, मिथकों, किवदंतियों और जनविश्वासों को न सिर्फ रोचक कथात्मक शैली में प्रस्तुत करती है वरन् उन सबकी मनोवैज्ञानिक और तार्किक विवेचन भी प्रस्तुत करती है जो कि सामान्य से सामान्य पाठक को चीजों को देखने-समझने की एक स्पष्ट दृटि भी देती है। पिछरी हुई लोकमान्यताएँ जो कि रूढ़ हो चुकी है, उसे शिक्षा और विज्ञान के राह चल कर ही दूर किया जा सकता है।

**संदर्भ :**


1. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, रश्मि प्रकाान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-2017, पृष्ठ-137
2. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-131
3. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-132
4. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-129
5. दास, प्रह्लाद चंद्र, आग ही आग कहानी संग्रह से, पृष्ठ-135


❑

# बाजार संस्कृति में लोक साहित्य

• भालचन्द्र जोशी •

**भालचन्द्र जोशी**

**परिचय-** जन्म : 17 अप्रैल 1956। शिक्षा : एम-ए- (अंग्रेजी)। कार्य क्षेत्र इंजीनियरिंग। आदिवासी जीवन पद्धति तथा कला का विशेष अध्ययन। निमाड़ की लोक कलाओं और लोक कथाओं पर काम। लघु-पत्रिका 'यथार्थ' और 'कथादेश' का संपादन। टेलीविजन के लिए फिल्म लेखन। कहानियों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद। हायर सेकण्डरी हेतु 'इनवाइरॉन्मेंटल एजुकेश एण्ड डिजास्टर मैनेजमेंट' पुस्तक प्रकाशित। कहानी संग्रह 'नींद से बाहर', 'पहाड़ों पर रात', 'चरसा', 'पालवा', 'जल में धूप' और 'हत्या की पावन इच्छाएँ, 'यथार्थ की यात्रा' तथा उपन्यास 'प्रार्थना में पहाड़' और 'जस का फूल' प्रकाशित। सम्मान : 'वागीश्वरी पुरस्कार', 'अम्बिका प्रसाद दिव्य स्मृति पुरस्कार', शब्द-साधक जनप्रिय लेखक सम्मान', 'अभिनव 'शब्द-शिल्पी सम्मान', 'जल में धूप' के लिए शैलेश मटियानी कथा पुरस्कार।

इस बाजार में जो सबसे बड़ी दिक्कत खड़ी हो गई है, उसमें एक बात की ओर ध्यान कम ही गया है। लोक संस्कृति और बोलियों के संदर्भ में, यह कि लोग बोलियों में सक्रिय हैं, उनकी रचनात्मक रुचि और आस्था बोलियों के लेखन में हाल-फिलहाल भी मौजूद हैं लेकिन उनमें से अधिकांश के पास संस्कृति, लोक और बोली के अंतर्संबंधों का यथेष्ट अध्ययन नहीं है। जिनके पास अध्ययन की संपदा है, उनकी रुचि और प्राथमिकता में बोली का लेखन नहीं रह गया है। अचरज की बात तो यह है कि बोली के जो लेखक गाँव की चौपाल या कस्बे या छोटे शहर में सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों पर ठीक-ठाक विश्लेषण कर लेते हैं। सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों, घटनाओं को लेकर उनके पास चर्चा का एक खुला स्पेस है, वही लोग जब बोली में लेखन करते हैं तो उनका रचनात्मक रूझान सीधे भक्तिकाल पर जाकर ठहरता है और जो सैकड़ों श्रेष्ठ भक्तिकाल के गीत या रचनाएँ हैं, उनकी सामान्य और संदिग्ध पुनरावृत्ति होती है। जो सामाजिक और राजनीतिक चेतना संपन्न बोली-लेखक हैं उनके लेखन में लोक-संस्कृति का आस्था-सौंदर्य छूट जाता है।

दरअसल, किसी बोली को बचाने की कोशिश में नारे शामिल रहे तो प्रयोजन की असफलता के द्वार पहले ही खुल जाते हैं। इस बाजार समय में बोली की उपयोगिता और निरंतरता के प्रति आश्वस्ति और सांस्कृतिक चेतना और लोक-आस्था होना आवश्यक-सा है।

बोली को लेकर एक दिक्कत और नज़र आ रही है कि बोली बचाने का अभिप्राय बोली के लेखक उसे भाषा का दर्जा दिए जाने में मानते हैं। बोली को प्रतिष्ठित करने के अबोध-उत्साह में यह नहीं देखा जा रहा है कि हर प्रदेश से बोलियाँ यदि भाषा का दर्जा हासिल कर गईं तो 'राष्ट्रभाषा हिंदी' का अस्तित्व संकट में रहेगा। अभी हिंदी की पक्षधरता में हिंदी भाषी प्रदेशों और अन्य प्रदेशों के हिंदी भाषी-समाज को मिलाकर एक सम्मानजनक संख्या नज़र आती है। यदि बोलियों को भाषा बनाने की यह अबोध जिद कायम रही तो किसी दिन राष्ट्रीय स्तर पर इस बात का जवाब देना मुश्किल हो जाएगा कि हिंदी भाषा की इतनी अल्प जनसंख्या में उसे किस आधार पर राष्ट्रीय भाषा माना जाए? क्योंकि हिंदी भाषा में प्रदेशों में हिंदी भाषी वह जनसंख्या घटकर बोली जो भाषा हो जाएगी, उसके हिस्से में चली जाएगी। यह संकट फिर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी झेलना पड़ेगा जहाँ हिंदी की वकालत इसलि, कमजोर हो जाएगी कि हिंदी भाषी क्षेत्र सिकुड़कर एक छोटे टापू में तब्दील हो गया है। इसी का फायदा बहुराष्ट्रीय

ने लिखा है कि- "तुम पराई भाषा में चाहे जिंदगी भर लिखते रहो, न तुम, न तुम्हारे लोग अपनी समझेंगे और न वे लोग जिनकी भाषा में तुम लिखना चाहते थे या लिख रहे हो।"

हालांकि सच का एक दूसरा पहलू यह भी है कि संकट के समय कुछ संस्कृतिकर्मी और लेखक बोली की अपनी आस्था की जिद में बोली का सौंदर्य शास्त्र तैयार करना चाहते हैं। जो लोग अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के षडयंत्र से वाकिफ हैं उनमें रचनात्मकता को लेकर एक स्वाभाविक हताशा आ गई है। इस भूमंडलीकरण या उत्तर आधुनिकता के समय में जो इन सबसे अपरिचय रखता है तो उसका यह अबोध रचनात्मक उत्साह ऐतिहासिक कार्य भी कर गुजरता है। कम-से-कम ऐसे कार्य जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज की भूमिका में रहेंगे, सुखद अचरज है।

लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि अबोध उत्साह की सभी रचनात्मक सक्रियता सुखद परिणाम दे, इसलिए बेहतर तो यही होगा कि इन कार्यों को भी वैश्विक दृष्टि के संदर्भ और अध्ययन के साथ पूर्ण किए जाएँ। इससे यह लाभ होगा कि बोली की बसावट से आई रचनात्मकता बोधगम्य होगी और अकारण की फूहड़ महत्वाकांक्षा की शिकार सरलीकरण से बच जाएगी। मौजूदा रचनात्मकता और 'परंपरा से हासिल' के ऐतिहासिक संदर्भों में गहरे विमर्श से एक नई जमीन, नई परंपरा का प्रस्थान विंदु कायम हो सकता है। इस तरह परंपरा की भाव भूमि पर नवीन रचनात्मकता का एक 'लोक-आख्यान' और 'लोक-संस्कृति विमर्श' दोनों के लिए सुविधा घर निर्मित हो जाएँगे। बगैर इतिहास-बोध के कोई भी भाषा, बोली की रचनात्मकता हो वह अपनी बौद्धिक विपन्नता में या तो निरर्थक सरलीकरण का रास्ता अपनाएगी या परंपरा को लेकर एक स्मृतिविहीन समाज को सब कुछ नष्ट हो जाने वाली स्थिति की कगार पर छोड़ देगी। वरना क्या कारण है कि बोली में सार्थक और समर्पित रचनात्मकता को वह सम्मान हासिल नहीं होता जो एक तृतीय श्रेणी की मंचीय कविता को मिलता है। इधर के लोक कलाकारों, लेखकों ने वह असंतोष खो दिया है। जो बोली के अपमान से पैदा होता है। बहुत कम लोग ऐसे बचे हैं जो लोक संस्कृति के लिए इतना स्पेस छोड़ते हैं जहाँ एक बोली अपने को सम्मानित दशा में अनुभव कर सके। साथ ही पाठक या श्रोता अपनी परंपरा-आख्यान के पुनर्पाठ को देख और समझ सकते हैं। रचनात्मकता जिसमें अपने 'लोक' और बोली को लेकर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा की ज़रूरत है जो अपने नवीन पाठ में रचना की भाव भूमि और उसके समकाल की जरूरतों की प्रतिध्वनि मौजूद कर सके।

उन ग्रंथों में निजता को खंडित करके संपूर्ण जगत के हित के लिए एक लंबी शब्द यात्रा है और उससे बड़ी उसकी अर्थवत्ता की यात्रा है। सामान्य में विलक्षण और निजता में संपूर्ण जगत के हित की चिंता, एक बड़ी मंगलकामना, ये पद रचना को कालजयी बनाते हैं।

दरअसल, हर आदमी के भीतर एक बनिया होता है जो किसी भी आकस्मिक आगत को तुला पर धर देता है। जो कवि या लेखक लोक साहित्य को समकाल के सापेक्ष देखते हैं या उससे आगे जाकर तुलनात्मक विश्लेषण करने की कोशिश करते हैं तो वे लोक साहित्य के साथ ज्यादती करते हैं। खुद को एक भ्रम के अँधेरे में धकेलते हैं। इतिहास-बोध होना और बात है तथा समय के तराजू पर इतिहास और वर्तमान रख देना नासमझी है। खासकर लोक साहित्य के संदर्भ में। सिर्फ पुरातन होना या उससे अंधत्व की हद तक आसक्ति रखना मनुष्य की इच्छाओं की सीमा निर्धारित कर देता हैं। जरूरत इस बात की है कि इतिहास-बोध, बल्कि एक गहरे इतिहास-बोध के साथ वर्तमान की पड़ताल की जाए। समय के साथ संदर्भ बदले हैं। सीमाएँ बदली हैं, खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन और व्यवस्था की इच्छाँ,-आकांक्षाएँ भी। इन सबके बीच इस पूरे कालखंड में विचार कितनी प्रासंगिकता के साथ, कितनी बड़ी रचनात्मकता में मौजूद है, यह महत्वपूर्ण है। किस सहजता और सादगी के साथ स्वयं ही लोक रचनाओं का हिस्सा हो जाने वाले उस विचार की एक आस्वाद प्रक्रिया की तल्लीनता में रूपांतरण करके सरल, संप्रेषणीय बनाना कठिन काम था, जो हमारे पूर्वजों ने कर दिखाया, जो लोग साहित्य में एक बड़े प्रमाण की भाँति मौजूद है। आज के समय के रचनाकार की दिक्कतें बढ़ गई हैं। आधे-अधूरे ज्ञान की सीमाओं के साथ, समर्थ वैचारिक दक्षता के बिना जो लोक रचनाओं का रचाव सामने आएगाा उसमें एक शहरी अबोध उत्साह या फिर महज अकादमिक अनुशासन का दबाव रहेगा। स्वस्फूर्त रचना की संप्रेषणीयता और उसे निरक्षर किसान या किसी भी ग्रामीण के सहृदय और उसके मानस का अमिट हिस्सा बना देने की शक्ति पुरातन लोक साहित्य के बाद न के बराबर देखने में आ रही है। क्यों?

इस क्यों का जवाब तलाशने के लिए न कोई इतिहास को संवाद करता है और न वर्तमान की द्वंद्वात्मकता के विशेषण का साहस जुटाता है। लोक साहित्य इतना सरल है कि उसकी व्यापकता को समझना एकाएक बहुत जटिल लगने लगा है। आधे-अधूरे मन और दबाव से पैदा हुई इच्छा या अकादमिक दबाव या लोभ से लोक साहित्य को समझने के प्रयत्न ने समझ का अवरोध ही खड़ा किया। इस कारण लोक साहित्य की सरलता और उसके अर्थों की आँच को समझने के लिए पश्चिमाश्रित जटिल विश्लेषणों ने एक बड़ी बाधा खड़ी की। लेकिन यह लोक साहित्य और खासकर लोक गीतों की शक्ति है कि ऐसी बाधा खड़ी करने की कोशिशों के उपरांत उसकी लय, प्रतिध्वनि और आत्मीय अर्थगर्भिता नष्ट नहीं हुई। प्रकृति का मानवीकरण हो या मनुष्यता को लेकर गंभीर दर्शन के गूढ़ सवाल, लोक गीतों ने सहज और सरल भावाभिव्यक्ति के साथ रचाव का हिस्सा बनाया कि उसकी आंतरिक लय और रचनात्मकता की सक्रिय ऊर्जा एक भिन्न आत्मीय काव्य-राग के साथ लोक के अर्थ बहुल जगत में डोलने लगी। अपनी गति-प्रकृति में ठेठ ग्रामीण चाहे-अनचाहे श्रोताओं के संवेदन धरातल पर निर्बाध दाखिल होकर ये लोक गीत एक बड़े दर्शन या विचार-बोध के उपरांत सहज ही उनके कंठ में अपने दुहराव के लिए स्थायी जगह बना लेते थे।

मैंने पहले भी उल्लेख किया है कि बाजार, संस्कृति और खासकर लोक संस्कृति की जड़ों की गहराई से भयभीत है। बाजार ने नया उपाय या षडयंत्र रचा कि इन गहरी जड़ों को उखाड़ने के कठिन श्रम के बजाय नई संस्कृति की स्थापना में श्रम और पूंजी लगाई जाए जिससे समूचा विश्व न सही लेकिन एशियाई देश तो एक भाषा, एक संस्कृति जो आधुनिकता के लबादे में दिखाई देगी, चपेट में आ ही जाएँगे उनको अपने श्रम में सफलता भी मिलती दिखाई दे रही है। अंग्रेजी का बढ़ता वर्चस्व ज्ञान का बढ़ता वर्चस्व नहीं है। भाषा कोई भी बुरी नहीं होती, लेकिन वह ज्ञान के आग्रह की अपेक्षा नियंत्रण या वर्चस्ववादी इच्छा के साथ आए तो घातक है।

छोटे-बड़े होटलों, पर्यटन स्थलों, धार्मिक स्थानों आदि स्थानों पर गाइड या छोटी-मोटी चीज़ें बेचने वाले जिस टूटी-फूटी अंग्रेजी का इस्तेमाल करते हैं, वे परोक्ष में एक भाषा का वर्चस्व स्थापित करते हैं। आजकल के अधिकांश छोटे व्यापारी, मझौले अफसर, कर्मचारी जो अंग्रेजी बोलते हैं वह अंग्रेजी, ज्ञान के लिए ज्ञान से नहीं आई है बल्कि खुद को आधुनिकता की दौड़ में पिछड़ने से बचाने के विवश उपक्रम में आई है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार भी यही चाहता है। वह व्यक्ति को ज्ञान नहीं, जानकार ही बनाने आया है। भाषा की मामूली-सी जानकारी से उनके व्यापार को पर्याप्त उपभोक्ता मिल रहे हैं। हम अपनी बोली और भाषा खो रहे हैं तो संस्कृति से अपरिचय तो स्वाभाविक रूप से हो जाएगा। अंग्रेजी की साम्राज्यवादी इच्छा से यह बाजार की इच्छा ज्यादा घातक है। अंग्रेज हमें लूटने और सभ्य बनाने आए थे और बाज़ार सुख और खुशी के रंगीन लेकिन भ्रामक सपने लेकर आया है। इस बाज़ार ने जरूरत को इच्छा में बदला है।"अब तक औद्योगिक पूंजीवाद माँग से पूर्ति की ओर आता रहा है, लेकिन अब वृद्ध-पूंजीवाद और उसका आत्मज उपभोक्तावाद पूर्ति से माँग की ओर आ रहा है। वह पूर्ति को ही माँग में बदलने को कटिबद्ध है। बहुराष्ट्रीय निगमों की पूर्ति-क्षमता की इच्छा हमारी माँग को निर्धारित कर रही है। हम जो माँग करते हैं, वह नहीं मिलता। हमें वह दिया जाता है जो वे देना चाहते हैं। हमारा बाज़ार माँग का बाजार नहीं बन पाया है जबकि वह पूर्ति का बाज़ार बनाया जा रहा है।" (नव-साम्राज्यवाद और संस्कृति-सुधीश पचौरी, पृष्ठ 129-130)

अब प्रश्न यह भी उठ सकता है या उठना चाहिए कि जब स्थितियाँ इतनी जटिल हो चुकी हैं तो इस साम्राज्यवादी इच्छा से आई अंतरराष्ट्रीय बाज़ार की मजबूत पकड़ से बाहर कैसे हों? इसका जवाब हमें अपनी लोक संस्कृति के आख्यानों में ही मिलेगा। अमीर-गरीब पहले भी थे, जाति समस्या भी थी, लेकिन पूंजी को आधार बनाकर इतना दंभी भेद नहीं था। हम अभी भी इसी लोक साहित्य से अपने द्वंद्व के निराकरण बरामद कर सकते हैं जहाँ इस भावना की प्रधानता थी कि "प्रभु इतना दीजै जा में कुटुंब समाय" या फिर "साधु भी भूखा न जाय" ज़रूरतों की इतनी सामान्य इच्छाओं तक जाने के लिए परिश्रम कठिन है, लेकिन दूसरे विकल्प ज्यादा जटिल हैं और फिर जब हम अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने के लिए दो सौ साल लड़ाई लड़ते रहे तो फिर इस बाज़ार से लड़ने में हम इतना धैर्य और प्रतिरोध क्षमता क्यों नहीं पैदा कर सकते हैं? इन्हीं सवालों और संदेह के बीच उन लोगों के साथ खड़ा होना पड़ेगा जिनके पास एक ज्ञान संपन्न प्रतिरोध क्षमता है। ❑

(पृष्ठ 8 का शेष भाग)

आपत्ति होती? उसने अनुमति दे दी। बीरबल ने वह तलवार अपने हाथ में लेकर उसे गौर से जाँचा, परखा और जायजा लिया। उलटा-पुलटा और चुप रहा।

अकबर ने उत्सुकतावश पूछ लिया, 'क्यों बीरबल, तुमने तलवार में क्या देखा? अब चुप क्यों हो गये? हमें अपनी खामोशी का कारण तो बताओ।'

बीरबल ने गहरी साँस लेकर कहा, 'कुछ नहीं आलमपनाह! मैं सोच रहा था कि यह तलवार सोने की बन जायेगी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ।'

'सोने की? वह कैसे?' अकबर चौंक गया।

'जी हाँ! हुजूर!' बीरबल ने कहा।

'साफ-साफ बताओ । यह सोने की कैसे बन सकती है?' अकबर ने पूछा।

'जहाँपनाह! एक मामूली सा पारस पत्थर लोहे को सोने में बदल देता है। मुझे हैरानी हो रही है कि यह आपके पवित्र हाथों में आने के बाद भी लोहे की कैसे रह गई?' बीरबल ने उदास होकर कहा अकबर बीरबल की बात का मर्म समझ गए। उन्होंने तुरंत उस बुढ़िया को उसकी तलवार के बराबर के वजन का सोना देने की आज्ञा दी। वह गरीब बुढ़िया अकबर और बीरबल को दुआएँ देती चली गई।

❑

यादें

# कविता

**राघवचेतन राय**

(जन्म : 13 दिसंबर 1944 - निधन : 25 जनवरी 2013)

## प्यार पर कविता

पत्नी पूछती है
प्यार पर कविता
क्यों नहीं लिखते
मैं टाल जाता हूँ बात
जो भी लिखा
प्रणय के आस-पास ही तो है।

पर छूटे हुए मित्र
जो हमराज थे प्रच्छन्न
तड़पते हुए प्रेम प्रकरण के
कहीं मिल ही जाते हैं
तब हूक उठती है मन में
छूट गये वह किनारे और पड़ाव।

सपने मीठे होकर भी अधूरे रहते हैं
महत्वहीन दिन
उदासी का साया डाले,

प्रेम दो बदन का
बोली से परे
सबसे महीन वार्तालाप है
जैसे किसी कालजयी खोज का
अनबुझ प्रमेय
जल्दी और देर की भंगिमाओं के बीच।

प्रणय में उगती हुई
देह
खिलते हुए आँख, होंठ, कद
और बोलती हुई अँगुलियाँ
अशुचिता ही औदात्य
थर्राता मन स्पर्श की भाषा में,

आज भी गीत याद हैं
"सूरतिया जाकी मतवारी
पतली कमरिया उमरिया बारी
एक नया संसार बना है
जिन के दो नयनन में"

"माथे तिलक नयन कजरारे",

"दिल के फफोले जल उठे दिल ही के दाग से
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से"

"तड़पत बीतत हैं दिन रैन
निसदिन विरहा की राह सताये
कैसे आवे मोहे चैन.....
ढूँढ़त नैना साँझ सकारे.....
आवो सुनावें मन की बाती
मधुर मधुर बैन"

प्यार में मन धड़कने लगता है
चराचर के साथ
दिल सोचने लगता है
लय को
पेशानी बाल ग्रीवा और बाहुपाश
जैसे आक्रमण और मृदुलता दोनों हसीन हैं।

कठिन है लेकिन इस तरह
हजारों साल में कभी रूपमती और बाजबहादुर का
पहली नजर का प्यार,
पर
अमर प्रेम का चरणामृत
सबको मिलता है एक बार
जो जीवन में सूखकर कोई अर्थपूर्ण सपना वन जाता है
और आता रहता है कई बार।

**साभार :** राघवचेतन राय रचना समग्र

# भाग्य

• दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश' •

नाथद्वारा की वह ठंडी रात शिवनारायण के लिए भारी पड़ गई थी... उन्होंने कई करवटें बदलीं, आँख मूँदकर लेटे रहे कि अब नींद आ जाए...पर कोई हिकमत काम नहीं आई। नींद उनसे रूठी कहीं दूर जा बैठी थी...!

वह यहाँ एक साहित्यिक कार्यक्रम में आए थे। रात आठ बजे के करीब आयोजन के बुफे स्टाल पर उन्होंने भोजन किया, फिर चौराहे से गर्म दूध पीकर अपने रूम में आ गए थे। कड़ाके की ठण्ड देखते हुए उन्होंने पैरों में मोजे चढ़ा लिए थे और हाथों में दस्ताने...! अपने कंबल के ऊपर गेस्ट हाउस की रजाई भी खींच ली थी। मिनटों में ऐसी गर्माहट आ गई कि आँखें निंदिया के मूँदने लगीं...मगर तभी मोबाइल बज उठा-'अरे द्वारपालों...'

नींद उचटने की खिन्नता के साथ उन्होंने मोबाइल देखा तो पत्नी का फोन था। झल्लाहट के साथ पूछा-'अब क्या हो गया ? अभी शाम को तो बात हुई थी।'

'हाँ, तब याद नहीं पड़ा। आज रमाकांत की बरखी है। उनके लड़के नृपेन्द्र ने पहली वार कोई आयोजन किया है।'-पत्नी ने बताया-'मगर संयोग देखो कि आज अपने चारों घर में कोई उनके यहाँ जाने वाला ही नहीं है...!'

'नहीं है तो न सही। आज के भाग-दौड़ वाले समय में यह कोई बड़ी बात नहीं है।'-पत्नी की बात काटते हुए शिवनारायण ने कहा-'सवेरे नृपेन्द्र से बात करके मैं स्थिति स्पष्ट कर दूँगा। अब शांति से सो जाओ...।'

उन्होंने फोन काट दिया था। वह दोबारा सोने के लिए आँख मूँद लिये...लेकिन नींद की जगह आँखों में पुराने दिनों की छवियाँ उमड़ने-घुमड़ने लगीं...रमाकांत उसके ही कुल का था। शिवनारायण उससे एक साल के बड़े थे, बाकी दोनों साथ पढ़ते थे। शिवनारायण की जो भाभी थीं, उनकी बड़ी बहन रमाकांत के भाई से ब्याही थीं। इसलिए बचपन से ही उस परिवार के साथ नजदीकी थी। तब शिवनारायण उनके यहाँ मौसम पर आम, मटरफली, शकरकन्द, गुड़ वगैरह देने जाते थे। असल में उन दिनों वह लोग गरीब थे। जबकि शिवनारायण का परिवार खुशहाल था।

तीन साल पहले रमाकांत गंभीर बीमारी की चपेट में आ गया था। शिवनारायण उनके यहाँ कुछ अधिक ही जाने लगे थे। तब उनकी पत्नी से मिलने पर रमाकांत की पत्नी ने कहा था-'अपने कुल-परिवार वालों में वख्त-जरूरत कौन उनके पास नहीं पहुँचता था? वह चुपचाप पैसा निकाल के दे देते थे। लोग पंद्रह-सोलह लाख

दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'

**पता–** ग्राम-पोस्ट : जासापारा, वाया : गोसाईंगंज, जिला : सुलतानपुर-228119 (उ.प्र.)

**मो.** 73791-00261

लेकर बैठे हैं। जब से सुन पाए हैं कि कैंसर हुआ है, झाँकने भी नहीं आते। यही भैया अकेले हैं जो दसवें-पन्द्रहवें दिन एक चक्कर...'

उन्होंने अकुलाहट के साथ करवट बदली पर पता नहीं कैसे उसका मन उस प्रकरण से जुड़ गया...रमाकांत उन दिनों रिटायर होकर गाँव में रहने लगा था। हालांकि लखनऊ से जिला मुख्यालय तक उसके फ्लैट और मकान थे। मगर उसे गाँव की रहाइश अधिक जमती थी। चार एकड़ जमीन उसने गाँव में भी खरीद रखी थी। पुरखों वाली जमीन का उसका शेयर था ही! अब वह इसी में खेती कराता था।

उस रोज...शिवनारायण घर के सामने गुमसुम सा खड़ा था। रमाकांत ने कार रोक दिया था-'नमस्ते भाई,

क्या बात है ?'

'नमस्कार, कुछ खास नहीं। वैसे ही...आप कहाँ...?'-शिवनारायन ने पूछा।

'अभी ससुराल के लिए निकला हूँ। शाम तक वापसी करनी है।'

'ससुराल आपकी कौन लंदन में है, आमद-रफ्त कुल पच्चीस-तीस किलोमीटर ! पाँच मिनट रुको तो कपड़ा बदल के आ जाऊँ। मुझे चौराहे पर छोड़ देना। कोई दिक्कत तो नहीं !'-उसने रमाकांत की तरफ देखा।

'आ जाओ, मेरा तो फायदा ही है। चौराहे तक एक बुद्धिजीवी का साथ मिल जाएगा।'-रमाकांत ने जवाब दिया था।

दस मिनट बाद वे कार में बैठे, चकरोड से आगे प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना से तैयार चिकने रोड पर आ गए थे। तभी रमाकांत ने पूछा-'भाई, आप तो पढ़ने-लिखने वाले व्यक्ति हो। मुझे बताओ, जिन्दगी में सबसे महत्वपूर्ण क्या होता है ?'

शिवनारायण का मन सुबह से ही भारी था। यह बासठ-तिरसठ साल की उम्र होती ही ऐसी है कि आदमी न चाहते हुए भी महीने में एक-दो बार अतीत में जरूर चला जाता है। ऐसे मौके जब भी आते हैं, उनको लगता है भाग्य के मामले में वह औरों के मुकाबले में काफी कमजोर रहे हैं। तभी इस सवाल पर तल्ख हो उठे-'जीवन में सबसे बड़ी भाग्य होती है, जैसे आप हैं। अपने ऊपर गौर करे, फिर मुझे देखें...फर्क दिख जाएगा।'

यहीं तक होता तब भी गनीमत थी। शिवनारायण ने अपनी कुंठा उगलते हुए पूरा इतिहास उधेड़ के रख दिया था। चौराहे तक पहुँचते-पहुँचते रमाकांत के भरे-भरे गेहुंए चेहरे पर अपमानबोध की गहरी स्याही पुत गई थी...रूम में नींद के लिए बेचैन शिवनारायण इस घटना की स्मृति से बेहद आहत हो उठे...वह चारपायी पर बैठ गए। हाथ में पहना दस्ताना और मोजे निकाल के बिस्तर पर रख दिया। थर्मस से ढक्कन में निकाल के दो ढक्कन पानी पिये, फिर अपने बड़े-बड़े सफेद बालों को अंगुलियों से सुलझाते वाशरूम में चले गये। वहाँ से लौटकर वे रजाई में घुस गये। मोबाइल में टाइम देखा। अभी बारह बजने वाले थे। उनको लगा, अब भी आँख लग जाय तो नींद पूरी हो सकती है। पुरानी यादों में डूबते-उतरते रहे...

रमाकांत शुरू में मिचमिची आँखों वाला रोगी जैसा कमजोर लड़का था। स्कूल में सदैव टाट के पिछले हिस्से में बैठता था। जबकि शिवनारायण स्वस्थ और चटक थे। कक्षा पाँच का परीक्षाफल आया तो पाँच मेधावी बच्चों की लिस्ट में वह तीसरे नम्बर पर थे, जबकि रमाकांत साधारण नम्बरों से पास हुआ था। यही स्थिति कक्षा आठ में थी, दसवीं में तो हालत और भी खराब थी, वह छप्पन प्रतिशत के साथ शानदार गुड सेकंड क्लास में पास हुये और रमाकांत तीन नम्बर कृपांक के साथ प्रोन्नत हो पाया था।

इसके बाद एक टर्निंग प्वाइंट आता है...रमाकांत की शादी हो गई। पत्नी उम्र में ढाई-तीन साल बड़ी थी। रंग भी साफ नहीं था, लेकिन नाक-नक्श ठीक थे और...बड़ी बात यह कि वह नई-नई मास्टरनी लगी थी और संपन्न परिवार से थी। जबकि शिवनारायण के परिवार में एक-एक कर दुश्वारियाँ आती गईं ...पहले खेती-किसानी देखने वाले बड़े बाबूजी के लड़के नहीं रहे, साल भीतर बंगाल में पिताजी की नई ट्रक पलटकर खाई में चली गई। ड्राइवर खलासी दोनों मारे गए थे और गाड़ी का ढांचा-पाँचा चकनाचूर हो गया था। गाड़ी का अभी बीमा भी नहीं हुआ था। इसके बाद काका के कोल डिपो में आग लग गई। इसी के साथ परिवार की सारी खुशियाँ भी खाक हो गईं और वह लोग कंगाली की चपेट में आ गये थे।

बड़ी मुश्किल से इंटरमीडिएट तक उनकी शिक्षा हो पायी थी। इस परीक्षा में भी उसके मार्क्स रमाकांत से अच्छे थे। अच्छी मेरिट की वजह से बीटीसी की ट्रेनिंग में उनका चयन हुआ और वह मास्टर हो गये। फिर भी शादी के लिए कोई ढंग का रिश्ता नहीं आया, जो आए वह कानी या लूली-लंगड़ी लड़कियों के थे। वह सत्ताईस साल के हो गए थे, तब एक विधवा मास्टरनी से रिश्ता बन पाया।

रमाकांत की पढ़ाई चलती गई। इसके साथ ही उसके मरियल से व्यक्तित्व में निखार आता चला गया। पत्नी की कमाई तो थी ही ! समय-समय पर ससुराल वाले भी उसकी मदद करते रहे। उसने पढ़ाई में मेहनत भी की, अन्यथा एमएससी एजी में कालेज का टॉपर न बन पाता। इस आखिरी रिजल्ट की धमक ऐसी थी कि उसने जिस पद के लिए भी आवेदन किया, वहीं से उसका बुलावा आया। अंततः उसने बीडीओ का मलाईदार

पद ज्वाइन किया। उसके बच्चे भी पढ़ाई-लिखाई में ठीक निकले। एक ही लड़का नृपेन्द्र है। उसने एमबीए किया था। आज वह सफल बिजनेसमैन है। एक लड़की ने बी.टेक. किया था। रमाकांत ने एक सम्पन्न परिवार के इंजीनियर लड़के से उसकी शादी किया था। आजकल दोनों एक ही फर्म में लगे हैं। दूसरी लड़की एम.एड. थी, वह ससुराल में अपना स्कूल संभालती है। रमाकांत जिला विकास अधिकारी के पद से रिटायर हुआ था। चेहरे पर रहने वाली सदाबहार प्रसन्नता और आत्मविश्वास से भरा उसका व्यक्तित्व गरिमामय प्रतीत होता था।

शिवनारायण इस बीच चेहरे से कुंठित लगने लगे थे। बात-बात में चिढ़ जाना उनका स्वभाव बन गया है। हालांकि उनकी स्थिति खराब नहीं है। वह संयुक्त परिवार से थे। भाई लोगों के बच्चे डॉक्टर, इंजीनियर और अफसर हैं। लड़कियाँ अच्छे परिवार में ब्याही हैं। उनका दामाद पुलिस इंस्पेक्टर है, लड़का उभरता हुआ वकील है। सबसे छोटे भाई की लड़की एयरटेल में रीजनल मैनेजर है। वह हेडमास्टर के पद से रिटायर हैं। अच्छी पेंशन उठाते हैं। पत्नी अभी सर्विस में है। भाइयों के बच्चे उसे मान-सम्मान देते हैं। मगर अपने विषय में सोचते हुए इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते। उनका सारा फोकस तो इस पर रहता है कि उन्होंने बच्चों को पढ़ाना चाहा तो वह मन माफिक प्रदर्शन न कर सके। उनको राष्ट्रपति पुरस्कार मिलने की बात आयी, तो इंटरव्यू के समय तीस प्रतिशत जिन्दगी और सत्तर प्रतिशत मौत के बीच झूलते हुए ऑपरेशन थिएटर में पड़े थे। आखिर क्यों होता है बार-बार उनके ही साथ ऐसा ?

उन्हें जो बीमारी थी, उसमें ज्यादातर लोग तो मर जाते हैं। जो बचते हैं, उनमें अधिकतर के साथ कुछ मानसिक या शारीरिक विकृति बची रह जाती है। जबकि वह एकदम दुरुस्त हैं। कहानी-लेख लिखते हैं। लम्बी यात्राएं कर लेते हैं। गौर इन बातों पर करना चाहिए, किंतु अपने दुर्भाग्य पर कुढ़ना उनका स्थायीभाव बन चुका है। इस मनःस्थिति में वह आत्मनियंत्रण खो देते हैं, किसे क्या कह दें कोई ठिकाना नहीं ! यही था, जब वह रमाकान्त के सीधे से सवाल पर अंटशंट बोल गये थे। बाद में जब उसकी बीमारी का पता चला तो वह

अपराधबोध से भर उठे थे.... और फिर पन्द्रह-बीस दिन में उससे मिलने जाने लगे थे...आज की रात वह इसी सब बातों में उलझे हुए पता नहीं कब नींद में चले गये ...।'

शिवनारायण सुबह जब जागे तो साढ़े सात बज रहे थे। जल्दी से मंजन करके वह बाहर आए, लोग खिली धूप का आनंद ले रहे थे। वह गेस्ट हाउस के बाहर सड़क पर आए और चाय की दुकान में बैठ गए। उन्होंने अखबार उठा लिया। इसी समय चाय आ गयी। उन्होंने चाय का गिलास उठा लिया और धीरे-धीरे सिप करने लगे... अखबार के पन्ने पलटते हुए समाचारों के शीर्षक भी देखते रहे...दस मिनट बाद चाय वाले को पैसे देकर वह सीधे रूम में आ गए।

वह इत्मीनान से काम करने के आदी हैं। नहाने और तैयार होने में उनको पर्याप्त समय लगता है। वह ऊनी कुर्ता, सदरी और सफेद पैंट में सजे धजे रूम से बाहर आए तो गेस्ट हाउस का मौन इंगित कर रहा था कि लोग कार्यक्रम स्थल की तरफ जा चुके हैं। वह फाइल बगल में दबाए थोड़ा तेज चलके इधर आ गए। स्टाल से खाने-पीने की सामग्री लेकर लोग नाश्ता करने में जुटे थे। उन्होंने एक प्लेट उठाई और दो ब्रेड पकौड़ों पर टोमैटो सास डालकर एक किनारे आ गए। पकौड़े स्वादिष्ट थे। इसे समाप्त करके उन्होंने कॉफी लिया।

आज शिवनारायण का सम्मान होना था। इसकी कवरिंग के लिए वह धूप में बैठे नई उम्र के कवि निर्मल कुमार के पास पहुँच गए। बोले-'निर्मल जी, मेरे सम्मानित होने के अवसर के कुछ फोटो लेने होंगे, क्या आप....?'

'बिल्कुल सर, मुझे खुशी होगी।'-वह एकदम राजी था।

उन्होंने अपना मोबाइल उसकी तरफ बढ़ाया और कुछ कहते इसके पूर्व ही निर्मल ने कहा-'सर, जितना बढ़िया मैं अपने मोबाइल से फोटो ले सकूँगा, वैसा आप वाले से नहीं कर पाऊँगा। बस आप अपना नम्बर दें, मैं आप के ह्वाट्सएप पर सेंड कर दूंगा।'

उन्होंने अपना नंबर बताया। निर्मल ने डायल किया तो शिवनारायण के मोबाइल पर रिंग आने लगी। उन्होंने भी निर्मल का नंबर सेव कर लिया।

निर्मल स्टाल की तरफ जाने लगा। तभी भदोही वाला ओमप्रकाश दिख गया। वह कई साहित्यिक कार्यक्रमों यह उनसे मिल चुका था।

उन्होंने आवाज दी-'अरे भाई पाण्डेय जी...!'

'नमस्ते सर...'-कहते हुए वह उनके पास आ गया-'और सर, कैसे हैं ?'

औपचारिक वार्तालाप चल निकाला...इसी समय लपकता हुआ सामने से विरेन लोढ़ा आ गया। शिवनारायण से मुखातिव होकर बोला-'सर, जलपान हो गया हो तो हाल में चलें।'

तीनों हाल में आ गए। यहाँ अभी कम ही लोग आए थे। वह और ओमप्रकाश सामने की पंक्ति में अगल-बगल बैठ गए। एक बार मन हुआ कि नृपेन्द्र को फोन लगा के अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। लेकिन तभी दिमाग में आया, अभी तो टेंट और कैटरिंग वालों के हिसाब- किताब में उलझा होगा, इसलिए दूसरी मीटिंग में...। उस समय आयोजक प्रतिभागियों को हल्दी घाटी का भ्रमण कराने ले जाएंगे। वह पहले उस तरफ जा चुके हैं, इसलिए उनको नहीं जाना है। वल्कि इस समय उन्होंने गोपाल नागदा और शंकरलाल मोहता को गेस्ट हाउस आकार मिलने का समय दे रखा है।

तभी मंच पर साहित्य मंडप के प्रमुख श्यामजी दिखे। उनके पीछे वीरेंद्र पारीक भी पहुँच गए। श्यामजी ने माइक संभाला। उनकी आवाज हाल में गूंजने लगी-'साथियों, न चाहते हुए भी हम आधा घंटा लेट हो चुके हैं। अभी सवा दस बजे हैं। दो बजे मैंने हल्दी घाटी निकलने के लिए बस वाले को बोल रखा है। हमारे पास सिर्फ पौने चार घंटे हैं। इसी में हमारा चालीस मिनट का लंच भी शामिल है ...।'

प्रबुद्धजनों के मंच पर आसीन होने के पश्चात् सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित किया गया। सरस्वती वंदना हुई। इसके पश्चात शिवनारायण, पूनम लोहार और धनंजय सेठिया को क्रमशः मंच पर आमंत्रित करते हुए, पारीक ने इनके साहित्यिक अवदान पर प्रकाश डाला। सम्मान के अंतर्गत मोतियों की माला, श्रीनाथजी का रेशमी दुपट्टा, श्रीफल, शाल, मेवाड़ी पगड़ी, प्रमाणपत्र, श्रीनाथजी का बड़ा विग्रह और लिफाफा यह हाल में उपस्थित अलग-अलग गणमान्य प्रतिभागियों द्वारा सबको प्रदान कराया गया।

इस पूरे सिलसिले को वीरेंद्र पारीक ने बड़े ही सुव्यवस्थित और गरिमा के साथ सम्पन्न किया। इसमें न हड़बड़ी थी, न उबाऊपन...! बल्कि एक स्तरीय लयबद्धता थी। मंचासीन विद्वानों ने अपने विचार रखे। मुख्य अतिथि और विशिष्ट अतिथि तो सम्मानित होने वालों के प्रति शुभकामना और साहित्य मंडप के बेहतरीन आयोजन के लिए बधाई देने तक ही सीमित रहे। मगर अध्यक्ष ने अपने उद्बोधन में शुभकामना और बधाई के साथ सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न और गतिशील समाज में साहित्य की निरंतर उपस्थिति की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला।

एक बजे सत्रावसान हुआ। लोग बुफे पंडाल में आ गए। शिवनारायण ने पहले सम्मान में मिला समान कमरे में रखा, फिर पंडाल में आए। भोजन की प्लेट लिए निर्मल सामने आ गया। बोला-'सर, देखिएगा मैंने हर स्टेप को कवर किया है।'

'धन्यवाद भाई, आभार...! भोजन के बाद कमरा नम्बर पंद्रह में आए।'-कहते हुए वह प्लेट लेकर लाइन में लगने चले गए।

यहाँ बुफे का स्टाल और पंडाल बड़ा था। लोग आराम से खाद्य सामग्री अपनी प्लेट में रखते गये और पंडाल में बिखर के बातचीत के बीच लंच लेते रहे...शिवनारायण शीघ्र ही भोजन समाप्त कर, रूम में आ गए। उनके पीछे निर्मल भी आ गया। फोटो शूट करने में उसने कमाल कर दिया था। शिवनारायण प्रसन्न हुए, उन्होंने सारे स्नैप अपने मोबाइल में तो लिए ही, लगे हाथों नृपेन्द्र का नम्बर देकर उसके व्हाट्स ऐप पर भी सेंड करा दिया। निर्मल जल्दी ही निकल गया था। शिवनारायण ने नृपेन्द्र को फोन लगाया। दो-तीन रिंग के बाद फोन उठ गया-'बाबूजी प्रणाम...!'

'खुश रहो बेटा।'-आशीर्वाद के बाद वह बरखी में न शामिल हो पाने की बात करने वाले थे, तभी नृपेन्द्र कहने लगा-'बाबूजी, अभी मेरे व्हाट्सऐप पर आपकी सम्मानित होने की फोटोज आई हैं। आप इस उम्र में दूर दराज के इलाके में सम्मानित होते हैं। जिले और गाँव का नाम रोशन कर रहे हैं। कितने भाग्यवान हैं आप ! मैं आप के भाग्य की सराहना करता हूँ। बधाई और शुभकामनाएं...!'

शिवनारायण एकबार तो स्तब्ध हो गए...फिर धीरे-धीरे मन में एक खुशियों भरा अहसास जगमगाने लगा. ..नृपेन्द्र ने सच कहा, वास्तव में मैं भाग्यवान हूँ...।' ❑

कहानी
(उर्दू)

# अबाबील

• ख़्वाजा अहमद अ'ब्बास •

उसका नाम तो रहीम ख़ाँ था मगर उस जैसा अत्याचारी भी शायद ही कोई हो। गाँव भर उसके नाम से काँपता था। न आदमी पर तरस खाए न जानवर पर। एक दिन रामू लुहार के बच्चे ने उसके बैल की दुम में काँटे बाँध दिए थे तो मारते मारते उसको अधमुआ कर दिया। अगले दिन ज़ैलदार की घोड़ी उसके खेत में घुस आई तो लाठी लेकर इतना मारा कि लहू-लुहान कर दिया।

लोग कहते थे कि अभागे को खुदा का ख़ौफ भी तो नहीं है। मा'सूम बच्चों और बे-ज़बान जानवरों तक को माफ़ नहीं करता। ये ज़रूर जहन्नुम में जलेगा। मगर ये सब उसकी पीठ के पीछे कहा जाता था। सामने किसी की हिम्मत ज़बान हिलाने की न होती थी।

एक दिन बिन्दू की जो शामत आई तो उसने कह दिया, "अरे भई रहीम ख़ाँ तू क्यों बच्चों को मारता है।" बस उस ग़रीब की वो दुर्गत बनाई कि उस दिन से लोगों ने बात भी करनी छोड़ दी कि मालूम नहीं किस बात पर बिगड़ पड़े। लोगों का ख़याल था कि उसका दिमाग ख़राब हो गया है। इसको पागलखाने भेजना चाहिए। कोई कहता था अब के किसी को मारे तो थाने में रपट लिखवा दो। मगर किस की हिम्मत थी कि उसके खिलाफ गवाही देकर उससे दुश्मनी मोल लेता। गाँव भर ने उससे बात करनी छोड़ दी। मगर उस पर कोई असर न हुआ। सुबह-सवेरे वो हल काँधे पर धरे अपने खेत की तरफ जाता दिखाई देता था। रास्ते में किसी से न बोलता। खेत में जा कर बैलों से आदमियों की तरह बातें करता। उसने दोनों के नाम रखे हुए थे। एक को कहता था नत्थू, दूसरे को छद्दू। हल चलाते हुए बोलता जाता, "क्यों-वे नत्थू तू सीधा नहीं चलता। ये खेत आज तेरा बाप पूरे करेगा। और अबे छद्दू तेरी भी शामत आई है क्या।" और फिर उन ग़रीबों की शामत आ ही जाती। सूत की रस्सी की मार। दोनों बैलों की कमर पर ज़ख़्म पड़ गए थे।

शाम को घर आता तो वहाँ अपने बीवी-बच्चों पर गुस्सा उतारता। दाल या साग में नमक है, बीवी को उधेड़ डाला। कोई बच्चा शरारत कर रहा है, उसको उल्टा लटका कर बैलों वाली रस्सी से मारते-मारते बे-होश कर दिया। मतलब कि हर रोज एक कोई न कोई आफत आई रहती थी। आस-पास के झोंपड़ों वाले रोज रात को रहीम खाँ की गालियों, उसके बीवी और बच्चों के मार खाने और रोने की आवाज़ सुनते मगर बेचारे क्या कर सकते थे। अगर कोई मना करने जाए तो वो भी मार खाए।

मार खाते-खाते बीवी ग़रीब तो अधमुई हो गई थी। चालीस बरस की उम्र में साठ साल की लगने लगी थी। बच्चे जब छोटे-छोटे थे तो पिटते रहे। बड़ा जब बारह बरस का हुआ तो एक दिन मार खा कर जो भागा तो फिर वापस न लौटा। नजदीक के गाँव में एक रिश्ते का चचा रहता था। उसने

ख़्वाजा अहमद अ'ब्बास

(7 जून 1914 - 1 जून 1987) , एक भारतीय फिल्म निर्देशक , पटकथा लेखक, उपन्यासकार और उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी के पत्रकार थे। उन्होंने भारत में चार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीते। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, उनकी फिल्मों ने कान्स फिल्म फेस्टिवल में पाल्मे डी'ओर (गोल्डन पाम ग्रैंड पुरस्कार) (तीन पाल्मे डी'ओर नामांकन में से) और कार्लोवी वेरी इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल में क्रिस्टल ग्लोब जीता। एक निर्देशक और पटकथा लेखक के रूप में, उन्हें भारतीय समानांतर या नव-यथार्थवादी सिनेमा के अग्रदूतों में से एक माना जाता है ।

अपने पास रख लिया। बीवी ने एक दिन डरते-डरते कहा, "बिलासपुर की तरफ जाओ जरा नूरू को लेते आना।" बस फिर क्या था आग बगूला हो गया। "मैं उस बदमाश को लेने जाऊँ। अब वो खुद भी आया तो टाँगें चीर कर फेंक दूँगा।"

वो बदमाश क्यों मौत के मुँह में वापस आने लगा था। दो साल के बाद छोटा लड़का बिन्दू भी भाग गया और भाई के पास रहने लगा। रहीम ख़ाँ को गुस्सा उतारने के लिए केवल बीवी रह गई थी सो वो गरीब इतनी पिट चुकी थी

कि अब इसकी आदी हो चली थी। मगर एक दिन उसको इतना मारा कि उससे भी न रहा गया। और मौका पा कर जब रहीम खाँ खेत पर गया हुआ था वो अपने भाई को बुला कर उसके साथ अपनी माँ के यहाँ चली गई। पड़ोसी की औरत से कह गई कि आएँ तो कह देना कि मैं चंद रोज के लिए अपनी माँ के पास रामनगर जा रही हूँ।

शाम को रहीम खाँ बैलों को लिए वापस आया तो पड़ोसन ने डरते- डरते बताया कि उसकी बीवी अपनी माँ के यहाँ चंद रोज़ के लिए गई है। रहीम ख़ाँ ने मूल ख़ामोशी से बात सुनी और बैल बाँधने चला गया। उसको यकीन था कि उसकी बीवी अब कभी न आएगी।

अहाते में बैल बाँध कर झोंपड़े के अंदर गया तो एक बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ कर रही थी। कोई और नजर न आया तो उसकी ही दुम पकड़ कर दरवाजे से बाहर फेंक दिया। चूल्हे को जा कर देखा तो ठंडा पड़ा हुआ था। आग जला कर रोटी कौन डालता। बगैर कुछ खाए-पिए ही पड़ कर सो रहा।

अगले दिन रहीम ख़ाँ जब सो कर उठा तो दिन चढ़ चुका था। लेकिन आज उसे खेत पर जाने की जल्दी न थी। बकरियों का दूध दूह कर पिया और हुक़्क़ा भर कर पलंग पर बैठ गया। अब झोंपड़े में धूप भर आई थी। एक कोने में देखा तो जाले लगे हुए थे। सोचा कि लाओ सफ़ाई ही कर डालूँ। एक बाँस में कपड़ा बाँध कर जाले उतार रहा था कि खपरैल में अबाबीलों का एक घोंसला नजर आया। दो अबाबीलें कभी अंदर जाती थीं कभी बाहर आती थीं। पहले उसने इरादा किया कि बाँस से घोंसला तोड़ डाले। फिर मालूम नहीं क्या सोचा। एक तिपाई लाकर उस पर चढ़ा और घोंसले में झाँक कर देखा । अंदर दो लाल बूटी से बच्चे पड़े चूँ-चूँ कर रहे थे। और उनके माँ बाप अपनी औलाद की हिफाजत के लिए उसके सर पर मंडला रहे थे। घोंसले की तरफ़ उसने हाथ बढ़ाया ही था कि मादा अबाबील अपनी चोंच से उसे नोचने को आतुर हुई।

"अरी, आँख फोड़ेगी", उसने अपना खौफनाक क़हक़हा मार कर कहा। और नीचे उतर आया। अबाबीलों का घोंसला बचा रहा।

अगले दिन से उसने फिर खेत पर जाना शुरू कर दिया। गाँव वालों में से अब भी कोई उससे बात न करता था। दिन-भर हल चलाता, पानी देता या खेती काटता। लेकिन शाम को सूरज छिपने से कुछ पहले ही घर आ जाता। हुक़्क़ा भर कर पलंग के पास लेट कर अबाबीलों के घोंसले की चहल-पहल देखता रहता। अब दोनों बच्चे भी उड़ने के क़ाबिल हो गए थे। उसने उन दोनों के नाम अपने बच्चों के नाम पर नूरो और बिन्दू रख दिए थे। अब दुनिया में उसके दोस्त ये चार अबाबील ही रह गए थे। लेकिन उनको ये हैरत जरूर थी कि बहुत दिनों से किसी ने उसको अपने बैलों को मारते न देखा था। नत्थू और छद्दू खुश थे। उनकी कमरों पर से जख्मों के निशान भी लगभग ग़ाइब हो गए थे।

रहीम ख़ाँ एक दिन खेत से जरा सवेरे चला आ रहा था कि चंद बच्चे सड़क पर कबड्डी खेलते हुए मिले। उसको देखना था कि सब अपने जूते छोड़कर भाग गए। वो कहता ही रहा, "अरे मैं कोई मारता थोड़ा ही हूँ।" आसमान पर बादल छाए हुए थे। जल्दी-जल्दी बैलों को हाँकता हुआ घर लाया। उनको बाँधा ही था कि बादल जोर से गरजा और बारिश शुरू हो गई।

अन्दर आ कर किवाड़ बंद किए और दीपक जला कर उजाला किया । अपनी आदत के मुताबिक बासी रोटी के टुकड़े कर के अबाबीलों के घोंसले के करीब एक ताक में डाल दिए। "अरे ओ बिन्दू। अरे ओ नूरो पुकारा मगर वो न निकले। घोंसले में जो झाँका तो चारों अपने परों में सर दिए डरे हुए बैठे थे। उसी जगह जिस जगह छत में घोंसला था वहाँ एक सूराख था और बारिश का पानी टपक रहा था।

अगर कुछ देर ये पानी इस तरह ही आता रहा तो घोंसला तबाह हो जाएगा और अबाबीलें बे-चारी बे-घर हो जाएँगी। ये सोच कर उसने किवाड़ खोले और मूसलाधार बारिश में सीढ़ी लगा कर छत पर चढ़ गया। जब तक मिट्टी डाल कर सूराख को बंद कर के नीचे उतरा तब तक वह पानी में भीगकर लथपथ था। पलंग पर जा कर बैठा तो कई छींकें आईं। मगर उसने परवाह न की और गीले कपड़ों को निचोड़ चादर ओढ़ कर सो गया। अगले दिन सुबह को उठा तो तमाम बदन में दर्द और सख़्त बुख़ार था। कौन हाल पूछता और कौन दवा लाता। दो दिन उसी हालत में पड़ा रहा।

जब दो दिन उसको खेत पर जाते हुए न देखा तो गाँव वालों को शंका हुई। कालू ज़ैलदार और कई किसान शाम को उसके झोंपड़े में देखने आए। झाँक कर देखा तो पलंग पर पड़ा आप ही आप बातें कर रहा था, "अरे बिन्दू। अरे नूरू। कहाँ मर गए। आज तुम्हें कौन खाना देगा।" चन्द अबाबीलें कमरे में फड़फड़ा रही थीं।

"बेचारा पागल हो गया है।" कालू जमींदार ने सर हिला कर कहा। "सुबह को किसी अस्पताल वालों को पता देंगे कि पागलख़ाने भिजवा दें।"

अगले दिन सुबह को जब उसके पड़ोसी अस्पताल वालों को लेकर आए और उसके झोंपड़े का दरवाजा खोला तो वो मर चुका था। उसकी पाइँती चार अबाबीलें सर झुकाए ख़ामोश बैठी थीं। ❑

जितेंद्र जलज
पता– जय पब्लिक स्कूल के आगे, झलक ब्यूटी पॉर्लर के पास, हरी नगर, पो-कातुल बोड, जिला- दुर्ग- 491001 (छ.ग.)
मो. 78802-15321

• जितेंद्र जलज •

## पेड़ और बीज के बीच वार्तालाप

कटते हुए पेड़ ने बीज से कहा,
यह मेरा अंत नहीं है
जब बादल बरसेंगे
ठंडी-ठंडी पुरवाई चलेगी
बीज से मेरा पुनर्जन्म होगा
किंतु मेरा कहा मानना
मनुष्यों की पहुँच से दूर
तुम किसी घने जंगल में उगना

बीज बोला, मैं मैदानों में उगूं
या घने जंगल में
मुझे काटने वाले हाथ
मुझ तक पहुँच जाएंगें

वे मनुष्य हैं,
सुधरेंगें नहीं।

## उदासी

अबके बरस
बादल भी खूब बरसे
फसल भी अच्छी हुई
बावजूद इसके
किसान उदास है

धारदार और नुकीले पंजों वाली
आँखो में
आज उसने अजीब सी चमक देखी।

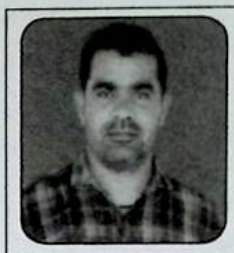

डॉ. नवीन दवे मनावत
पता– कैलाश नगर, जि.सांचोर, सांचौर-343041 (राज.)
मो. 94147-92013

• डॉ. नवीन दवे मनावत •

## नदी की हत्या

कितनी रफ्तार थी उस नदी की
ये जानती है खेत पर बनी मेड़
कितना उत्साह था उस नदी का
ये महसूस करता है एक बीज
कितना लंबा रास्ता था उस नदी का
यह जानते हैं जुड़ते-टूटते विकासशील शहर

नदी चलती है तोड़ने के लिए
उन सीमाओं को
जो बना रखी है इंसानों ने निश्चित परिधि में
नदी खींचती है उन रेखाओं को
जो रेखाएँ दहाड़ती है करने को नेस्तनाबूद इंसानियत

जहाँ से प्रारंभ है नदी का
वहाँ से ही बनाती चलतीं है सभ्यताएँ
यह सभ्यताएँ सृष्टि के प्रारंभ से
नदियों से संवाद करती आई हैं

नदियों ने हमेशा अपनी उम्र
का हिस्सा लगा दिया
मानवता स्थापित करने में

नदियों ने ढोया एक झूठ को
जो सच बनने के लिए
समुद्र को लाँघने की प्रतिस्पर्धा में है

नदियों ने बनायें धर्म और संस्कृति
नदियों ने किया पवित्र मानव
नदियों ने हमेशा राष्ट्र धरम को अपनाया
और हमने कर दी उनकी हत्या...

बन्धु पुष्कर
पता–सेंट्रल इर्क एंड रूम एण्ड 'के-विंग'
204, एन.आर.एस होस्टल, नॉर्थ कैंपस,
यसीयू, हैदराबाद, तेलंगाना-500046
मो. 63923-02395

• बन्धु पुष्कर •

## मेरे साथ बुद्ध चल रहे हैं

शाम में छाई है उदासी
अँधेरा है घनघोर
उमड़ रही है भीड़ धीरे-धीरे
आँखों में बेचैनी लिए
बिखरा है जंगल में चारों ओर पलाश
दुःख से लिपट जलने लगी है ये पृथ्वी
और मेरे साथ बुद्ध चल रहे हैं।

धर्मराज के हर जवाब से संतुष्ट है यक्ष प्रश्न
यम-नचिकेता संवाद से सिद्ध है
'आत्मा का रहस्य'
परत-दर-परत उलझती गई
चाणक्य की नीति भी
तो व्यभिचारियों की संगत में है स्मृतियाँ
और बुद्ध हर प्रश्न पर मौन हैं।

कौंध रही है दिमाग में बेचैनी
दुष्चक्र ने निगल लिया है हल
स्वास्तिक की भाँति घूम रहें हैं मन में सवाल
सुदर्शन ने गढ़ा है मिथक! मोक्ष-विधान रचकर
और मेरे साथ बुद्ध चल रहे हैं।

लोगों के बर्ताव से लगा
जीवन में स्थाई कुछ भी नहीं
सब क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है,
जरा-मरण के चक्र से कोई मुक्त नहीं।
मेरा मित्र विपाशना से हो आया है
पर उलझा हुआ है।
तथागत की जरूरत उसे फिर है,
शायद! सभी को है।
कोई सुजाता ने नहीं, माँ ने खीर बनाई है आज
मैं बुद्ध-धम्म-संघ की शरण में जाता हूँ
अकेले चलते हुए एक जगह मैंने लिखा पाया
'अप्प दीपो भवः'

### कुछ शेर

ज्ञानप्रकाश विवेक
पता– 1875, सेक्टर-6,
बहादुरगढ़-124507 (हरियाणा)
मो. 98134-91654

• ज्ञानप्रकाश विवेक •

हाथ फैलाने के अंदाज़ सिखाता क्यूँ है
राहतें दे के मुझे इतना झुकाता क्यूँ है

तू है तूफ़ान तो फिर राजमहल से टकरा
मेरी कमज़ोर-सी दीवार गिराता क्यूँ है

मैं नंगे पाँव हूँ जूते ख़रीद सकता नहीं
कि इसको लोग समझते हैं सादगी मेरी

समय है अलविदा का और हम दोनों खड़े हैं यूँ
कि जैसे आँख में पानी इधर भी है उधर भी है

सभी ने क़ीमती कपड़े पहन के आने हैं
बदन के घाव हरेक शख़्स को छुपाने हैं

तेरे नगर की उदासी का हाल तू जाने
मेरे नगर में लतीफ़ों के कारख़ाने हैं

कोई पैदल ही मेरा साथ निभा दे शायद
कारवाला तो बहुत तेज़ निकल जाएगा

इक शख़्स गुलेलों को यहाँ बेच रहा है
ये बात परिन्दों को बता क्यों नहीं देते

हम ख़ानाबदोशों के नहीं होते ठिकाने
मत पूछ कि हम घर का पता क्यों नहीं देते

माधुरी राऊलकर
पता– 76, राम नगर, नागपुर-440033
महाराष्ट्र
मो. 87934-83610

ग़ज़ल

• माधुरी राऊलकर •

## सुनहरा ख़्वाब

महकता गुलाब होते आप
सुनहरा ख़्वाब होते आप

मैं उम्रभर प्यासी ही रहती
प्यार का सैलाब होते आप

कितनी खुशबू बिखरती अगर
फूल का शबाब होते आप

मैं धूप में चलने को तैयार
छाँव का हिसाब होते आप

सवाल उलझनें न बढ़ाते
गर सही जवाब होते आप

प्यास मिटने का एहसास हो
बूँदों का हिसाब होते आप

नकाब ओढ़ा ही नहीं फिर,
कैसे बेनकाब होते आप।

अंजू अना
पता– अंजू पी केशव, 40, पी एस,
रो. नं. 3, संकोशाई, डिमना रोड, मशेदपुर,
झारखंड-831012
मो. 82100-46398

ग़ज़ल

• अंजू अना •

## सुनहरा ख़्वाब

(1)

हैं गलतफ़हमी में जो भी रो रहे हैं
सोच कर ये के दुखों को धो रहे हैं

बाद में कोई गिला मत कीजिएगा
आज ही ये देखिए क्या बो रहे हैं

आपको चढ़ना है तो है बदहवासी
लोग कुछ कंधों पे पर्वत ढो रहे हैं

खोजना है संस्कृति के बीज जिनको
भीड़ में वो आज खुद ही खो रहे हैं

ठीक है बदलाव के नायक नहीं हम
हाँ मगर बदलाव में कुछ तो रहे हैं

भूलिए उनको कभी मत जिंदगी में
आपकी तामीर में जो जो रहे हैं

बोलिए कैसे निभे रिश्ता अकेले
जबकि रिश्ते में हमेशा दो रहे हैं

(2)

जगे पर हम अपने को पूरा लुटा के
न था होश बैठे हैं सब कुछ गँवा के

भले जिंदगी थी भरी जहर से पर
मिली हमको साँसें यही जहर खा के

चढ़ेगा न अब रंग कोई गुनाह का
चले आए जमजम में हम भी नहा के

नज़र आएगी असलियत आप देखें
हिमायत का चश्मा कभी जो हटा के

जमाना है काजल की डिब्बी पता था
यहाँ तुमको रहना था दामन बचा के

❑

# परसाई को समझने के लिए जरूरी पुस्तक

• डॉ. बहादुर सिंह परमार •

'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' शीर्षक ऐसा है, जिसे पढ़कर अनेक प्रश्न मस्तिष्क में कौंधते हैं। इन प्रश्नों के समाधान हेतु जब पाठक छह सौ तिरसठ पृष्ठीय पुस्तक को पढ़ना प्रारंभ करता है, तो लेखक राजेन्द्र चन्द्रकांत राय की शैली उसे ऐसा बाँधती है कि किताब को पूरा करके ही पाठक दम रोकता है। शोधपूर्ण तथ्यों व साक्ष्यों से भरपूर, सदी के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के जीवन पृष्ठों को उघाड़ती ऐसी पुस्तक जिसकी चर्चा आज सर्वत्र हो रही है। 05 नवंबर 1953 को जबलपुर में जन्मे लेखक राजेन्द्र राय ने इस पुस्तक के पहले भी काम कंदला, फिरंगी ठग और खलपात्र जैसे उपन्यास और बेगम बिन बादशाह, गुलामों का गणतंत्र व अच्छा तो तुम यहाँ हो जैसे कहानी-संग्रह रचकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। वे अच्छे नाटककार हैं। उन्होंने सहस्त्रबाहु, थैंक्यू स्लीमैन व सलाम हनीफ मियाँ जैसे नाटक भी लिखे हैं। वे इतिहास, पर्यावरण और मीडिया जैसे विषयों पर भी अपनी कलम चलाकर समाज का दिशादर्शन करते रहते हैं। उनकी रचनात्मकता व सक्रियता प्रणम्य है।

व्यंग्यकार, कवि, कथाकार हरिशंकर परसाई के जन्म शताब्दी वर्ष में सेतु प्रकाशन, नोएडा द्वारा उनकी प्रामाणिक जीवनी का पेपर बैक संस्करण छापना महत्वपूर्ण कार्य है। इस पुस्तक के माध्यम से परसाई जी के जीवन के विविध पहलुओं से हम परिचित हुए हैं। एक लेखक जो लिखता है, उसके अनुभव, उसका जीवन संघर्ष और परिवेश उसे बनाता है। साहित्य को समझने के लिए जीवनी को जानना जरूरी होता है। जिस तरह प्रेमचंद को समझने के लिए हमें कलम का सिपाही, शरद चन्द्र को समझने के लिए आवारा मसीहा और तुलसीदास को जानने के लिए मानस का हंस पाठक को नई दृष्टि प्रदान करता है उसी तरह परसाई को समझनें के लिए काल के कपाल पर हस्ताक्षर पढ़ना जरूरी है।

इस पुस्तक में परसाई के अंदर बैठे परसाई का अनुसंधान चार भागों में किया गया है- काल से मुठभेड़, चित्र वीथि, काल के कपाल पर हस्ताक्षर तथा परिशिष्ट। यह पुस्तक जहाँ एक ओर परसाईजी के बचपन, उनके पूर्वजों को इतिहास, उनके संघर्ष पर तो प्रकाश डालती ही है, वहीं तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास को भी समझने का साधन बनती है। परसाई जी के बचपन की विपरीत परिस्थितियों का लेखक

**पुस्तक-** काल के कपाल पर हस्ताक्षर
**लेखक-** राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय
**प्रकाशक-** सेतू प्रकाशन प्रा.लि.
**मूल्य-** ₹ 625.00/-

ने सजीवता से चित्रण किया है। किस्सागोई शैली इतनी आकर्षक है कि पाठक लगातार कथ्य से बँधा रहता है। परसाईजी के बचपन के संघर्ष का चित्रांकन करते हुए लेखक ने रहट गाँव के सरकारी प्राइमरी स्कूल के माध्यम से उस समय के समस्त प्राइमरी स्कूलों के कल्चर को सामने रख दिया है जिससे सरकारी स्कूलों में होशियार बच्चों का प्रभाव तथा शिक्षक-अभिभावक रिश्तों का पता चलता है। स्कूलों का रीडिंग सेसन तथा अन्य गतिविधियों की लाइव स्टोरी इसमें मिलती है। मैट्रिक पास करने के बाद नौकरी की तलाश में दर-ब-दर भटकना तथा जंगल महकमा में नौकरी लगने पर हरिशंकर परसाई का पहली पोस्टिंग पर ताकू जाना।

वहाँ जमादार साब का रौब व दबदबा होना, वहाँ डोरीलाल का सेवक के रूप में मिलना। ताकू चाचा यामलाल के साथ रहना। इस सबका वृत्तांत लेखक ने किताब में रील देखने की स्टाइल में लिखा है। इसमें जंगलात विभाग के कामकाज से लेकर प्रशासनिक हल्कों में अंग्रेजों के दबदबे और निचले स्तर पर हिन्दू-मुस्लिम की बढ़ती खाई का पता चला है। वहाँ के जीवन के साथ वनवासी गोड़ों की जीवनशैली का ज्ञान होता है कि वे कितने सीधे व सरल जीवन जीते थे। डिपो साहब से परसाई हरसंभव संबंध सुधारने की कोशिश करते हैं किंतु उन्हें सफलता नहीं मिलती और उन्हें यहाँ से नौकरी छोड़ने का निर्णय लेना पड़ता है, वे ईमानदारी से काम करते किंतु साजिश के तहत उन्हें अपमानित किया जाता है। इस जिल्लत भरी नौकरी से मुक्ति हेतु वह घर से बाबूजी की बीमारी का तार मंगवाते हैं और आकस्मिक अवकाश लेकर घर आते हैं और पाँचवें दिन इस्तीफा लिखकर जंगल विभाग को अलविदा कह देते हैं और उनकी संवेदना केवल यहाँ डोरी लाल से जुड़ती है।

परसाई जी की जिंदगी का अगला पड़ाव खंडवा स्कूल में शिक्षक बनने का होता है। नौकरी की तलाश में वे टिमरनी के स्कूल मैनेजर द्वारा नए स्थापित खंडवा स्कूल में केशवचन्द्र बग्गा के सानिध्य में नौकरी पा जाते हैं। शिक्षक की नौकरी उनके स्वभाव से मेल खाती थी। यहाँ उन्होंने काफी परिश्रम व नए प्रयोग करके अपना स्थान बनाया और स्कूल की तरफ से जबलपुर में टीचर्स ट्रेनिंग करने का अवसर हासिल कर लेते हैं। ट्रेनिंग के दौरान लाइब्रेरियन परांजपे, रामेश्वर गुरु, भवानी प्रसाद तिवारी, ठाकुर पूरन सिंह तथा गौतम जी आदि से मिलते हैं। जबलपुर में उनका आना व जीवन को विस्तार देना सभी कुछ लेखक राय ने व्यवस्थित ढंग से लिखा है।

मॉडल स्कूल जबलपुर की नौकरी के दौरान परसाई की प्रतिभा को निखार मिला। जबलपुर में चल रही गतिविधियों में उनकी सक्रिय सहभागिता से जीवन को विस्तार मिला। मॉडल स्कूल के परसाई मास्साब स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के सक्रिय सहयोगी बने। उनके अंदर जो गरीबों, वंचितों, शोषितों तथा उपेक्षितों का दर्द था वह विद्रूपताओं व विसंगतियों के माध्यम से व्यंग्यात्मक शैली में रचनाओं के माध्यम से रेखांकित होता रहा। उनके स्वाभिमान के कारण नौकरियाँ छूटती रहीं वे नई-नई परिस्थितियों में संघर्ष के लिए जूझते रहे। नवीन विद्या भवन तथा जैन बोर्डिंग में रहना और जीवन में मूल्यों के लिए प्रतिबद्ध रहना, उनकी बड़ी खूबी रही।

लेखक राय ने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवेश पर परसाई की जीवनी के माध्यम से प्रकाश डाला है। शकुंतला तिवारी से प्रेम और उसका परिवार की खातिर बलिदान का प्रकरण भी लेखक ने बड़ी कुशलता से पुस्तक में दिया है। नरेश सक्सेना, सोमदत्त, मुक्तिबोध तथा विनोद शुक्ल की दोस्ती, वसुधा पत्रिका के प्रकाशन की तथा-कथा तथा उसके प्रकाशन में आने वाली दिक्कतों को बखूबी दिखाया गया है। पुस्तक में कविताओं, गीतों तथा संस्मरणों के माध्यम से पाठक पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पुस्तक प्रकाशन के व्यवसाय की मजबूरियाँ, कवियों व लेखकों की पुस्तक प्रकाशन पर होने वाली प्रसन्नता का भाव, पुस्तक विक्रय की स्थितियों को इस जीवनी को पढ़कर समझा जा सकता है।

लोक जीवन की झाँकी भी पाठक तक इस जीवनी के माध्यम से पहुँचती है। लोक-व्यवहार में विवाह संस्कार, मृत्यु उपरांत के कर्मकांड तथा लोक मानसिकता के दर्शन पुस्तक पढ़ने से होते हैं। पुस्तक की भाषा सहज, सरल तथा प्रवाहयुक्त है। भाषा पात्रों की मानसिकता अनुकूल है। लेखक राय को महाकौशल अँचल की गहरी सांस्कृतिक समझ है। उन्होंने जीवनी लिखने के पहले गहन शोध किया। परसाई के स्कूल का दाखिला रजिस्टर का पन्ना व हस्तलेख का पुस्तक में देना उसकी प्रामाणिकता को बढ़ाता है। मैं समझता हूँ कि परसाई के साहित्य व उनको समझने के लिए यह पुस्तक पढ़ना अनिवार्य है। उसके बिना परसाई के लेखन के विविध आयामों को हम अनुभव नहीं कर सकते। ❑

समीक्षक का पता– प्राध्यापक,
हिंदी अध्ययनशाला एवं शोध
केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखण्ड
विश्वविद्यालय, छतरपुर-471001 (म.प्र.)

## नांगलोई में 'नवल रश्मि-एक भोर नई' ने किया साहित्यिक संगोष्ठी

दिल्ली- 7 जनवरी– नांगलोई में सुरभि स्टूडियो एंव उर्दू हिंदी एकता अंजुमन के सौजन्य से साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में सैयद नज़्म इकबाल , सारस्वत अतिथि राजेंद्र कलकल, विशिष्ट अतिथि कुसुमलता सिंह रहे। अतिथियों का स्वागत कार्यक्रम की संस्थापिका निधि भार्गव 'मानवी', संयोजक मंडल के संजीव कुमार, राजीव तनेजा, कुसुम सिंह 'सुनैना' ने किया। पहले सत्र में महेश वर्मा 'दिव्यमणि' ने बेहतरीन संचालन किया। दूसरे सत्र में शायर असलम बेताब का संचालन रहा। विभिन्न प्रांतों से आए रचनाकारों ने अपनी शानदार रचनाएँ सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

## डॉ. राजाराम त्रिपाठी को काका साहेब कालेलकर राष्ट्रीय सम्मान

दिल्ली 20 जनवरी– सन्निधि संगोष्ठी द्वारा आयोजित शतक संगति में कल, आज और कल के आइने में साहित्य के अंतर्गत डॉ. राजाराम त्रिपाठी को आदिवासी साहित्य के संदर्भ में काका साहेब कालेलकर राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया गया।

## हिंदी कविता और सांस्कृतिक प्रतिरोध पर चर्चा

2 जनवरी, मंगलवार-कोलकता– कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एकदिवसीय व्याख्यान कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम का विषय 'हिंदी कविता और सांस्कृतिक प्रतिरोध' था। इस कार्यक्रम की प्रमुख वक्ता केरल विश्वविद्यालय के प्राध्यापिका एस. आर. जयश्री जी थीं।

व्याख्यान कार्यक्रम के विषय "हिंदी कविता और सांस्कृतिक प्रतिरोध" के विषय में कहते हुए उन्होंने कहा कि साहित्य केवल दर्पण मात्र नहीं होता यह अपने पाठक को आलोचनात्मक अंतदृष्टि देता है। सांस्कृतिक प्रतिरोध तव शुरू होता है जव देश के सभी समुदाय अपने व्यक्तिगत अस्मिता को लेकर लड़ने लगते हैं, वर्चस्ववादी खतरा उत्पन्न होने पर स्वतंत्र, सामान और मूल्यों से पूर्ण देश नहीं वन पाता। साहित्य कलात्मक सौंदर्य है जो इमानदारी के साथ वैचारिक परिवर्तन के साथ जुड़ता है, और नई वास्तविकताओं की उपस्थिति दर्ज करवाता है। विभागाध्यक्ष श्री राम प्रवेश रजक जी ने कार्यक्रम का समापन करते हुए सभी के प्रति सादर धन्यवाद ज्ञापित किया।

—समाचार संकलन एवं प्रस्तुति-टीम 'ककसाड़'

2023-24

# पुस्तक-सूची

प्राप्त करने के लिए संपर्क करे

99682-88050

amazon.in
पर उपलबध

notnul.com
पर उपलबध

**लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस**

4637/20, शॉप नं.-एफ-5,
प्रथम तल, हरि सदन, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Mob.: 99682-88050, 99118-66239
E-mail: littlebirdinfo21@gmail.com
Website: www.littlebirdpublications.com

ककसाड़ फरवरी 2024 • RNI NO. DELHIN/2015/65699 • KNHO Delhi-110051
On 1st-2nd of every month • DL (E)-20/5520/2023-25

# ककसाड़ के आगे बढ़ते कदम

## मासिक पत्रिका

प्रकाशक, मुद्रक और स्वामी कुसुमलता सिंह द्वारा सी–54 रिट्रीट आपार्टमेंट, 20 आई पी एक्सटेंशन, दिल्ली–110092 से प्रकाशित एंव डॉलफिन प्रिंटो ग्राफिक्स 4ई/7 पावला बिल्डिंग झंडेवालान एक्सटेंशन नई दिल्ली से मुद्रित। संपादक– डॉ. राजाराम त्रिपाठी